

4.1 हाल ही का वृद्धि-मूलक साहित्य संस्थाओं के प्रभुत्व पर केंद्रित है क्योंकि ये संस्थाएं ही उस रूप में आर्थिक विकास की निर्धारक होती हैं जो कार्य, बचत, निवेश, नवोन्मेष, उत्पादन और विनिमय से संबंधित निर्णयों को प्रभावित करती हैं। संस्थाओं पर नए सिरे से ध्यान केंद्रित किए जाने के कारण कंपनी संचालन संबंधी सुधारों की महत्वाकांक्षी कार्यसूची की ओर ध्यान दिया जाने लगा है जिसका उद्देश्य है - भ्रष्टाचार में कमी लाना, विनियामक उपकरणों को सुधारना, मौद्रिक और राजकोषीय संस्थाओं को स्वतंत्र बनाना, कंपनी संचालन को सुदृढ़ करना आदि - जिन्हें सुधारों का दूसरा चरण कहा गया है। यह तर्क दिया गया है कि नीतिगत परिवर्तन तब तक अप्रभावी रहेंगे जबतक कि उन्हें संस्थागत सुधारों के रूप में दृढ़तापूर्वक आत्मसात नहीं किया जाता है। तथापि, अनुभवजन्य विश्लेषण में यह कठिनाई आती है कि संस्थागत गुणवत्ता आय के स्तरों से उत्पन्न होती है और अभी भी इस बारे में काफी कुछ सीखना बाकी है कि आधारभूत रूप में संस्थागत गुणवत्ता में सुधार करने से क्या तात्पर्य है (रोड्रिक आदि, 2004)। इसी के संदर्भ में देश विशेष की परिस्थितियों में संस्थाओं के विकास का अध्ययन करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

4.2 किसी अर्थव्यवस्था के संस्थागत ताने-बाने में केंद्रीय बैंकों की महत्वपूर्ण स्थिति होती है। जैसा कि अध्ययन III में चर्चा की गई है किसी आधुनिक केंद्रीय बैंक के कार्य सत्रहवीं सदी में यूरोप में स्थापित प्रारंभिक केंद्रीय बैंकों से अपेक्षित कार्यों से काफी भिन्न हैं। भारतीय संदर्भ में केंद्रीय बैंकिंग के विकास की अपनी विशिष्टता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने सांविधिक उत्तरदायित्वों को निवाहते हुए, राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, विशेषकर वित्तीय क्षेत्र के विकास में। वस्तुतः संस्थाओं का निर्माण करना भारत में केंद्रीय बैंकिंग का एक विशिष्ट उल्लेखनीय पहलू है।

4.3 इस अध्याय में 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक के गठन से लेकर अबतक सत्तर वर्षों की अवधि के दौरान भारत में केंद्रीय बैंकिंग के विकास का वर्णन किया गया है। विश्लेषण की सुविधा के लिए, 1935-2005 तक की सम्पूर्ण अवधि को मौटे तौर पर तीन चरणों में बांटा गया है : स्थापना का चरण (1935-1950), विकास का चरण (1951-1990), तथा सुधार का चरण (1991 से)। भारत में 1951 में आर्थिक योजना बनाए जाने तथा 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधारों की शुरुआत वे मील के पत्थर रहे हैं, जिनके रिजर्व बैंक की कार्य-प्रणाली पर गहरे प्रभाव पड़े हैं। इन अवधियों में रिजर्व बैंक ने विशिष्ट रूप से भिन्न-भिन्न शासन व्यवस्थाओं में कार्य किया है। स्थापना के चरण के अधिकांश वर्षों में यह एक निजी बैंक

था, हालांकि इसका गठन एक संविधान के अंतर्गत हुआ था तथा इस पर तत्कालीन उपनिवेशवादी सरकार की निगरानी रहती थी। इस अवधि के दौरान रिजर्व बैंक के कार्य अनिवार्य रूप से परंपरागत केंद्रीय बैंकिंग के कार्यों तक सीमित थे जैसे - नोट जारी करने वाली प्राधिकारी संस्था तथा सरकार का बैंकर। युद्ध की अवधि तथा उसके बाद की अवधि के वर्षों के दौरान इसका मुख्य कार्य था युद्ध के लिए वित्तपोषण को सुविधाजनक बनाना, स्टर्लिंग ऋण का प्रत्यावर्तन करना तथा विदेशी मुद्रा के नियंत्रण के लिए आयोजना तथा उसका प्रशासन करना। भारतीय रिजर्व बैंक (सार्वजनिक/सरकारी स्वामित्व में अंतरण) अधिनियम 1948 के अनुसार 1949 में भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीकरण कर दिए जाने तथा बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 को बनाए जाने पर बैंकों के विनियमन और पर्यवेक्षण पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित किया गया। रिजर्व बैंक की पहल पर देश में बैंकिंग की सुविधाओं के विस्तार से संबंधित महत्वपूर्ण नीतिगत मुद्दों पर विचार करने के लिए सरकार ने ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति का गठन किया। पंचवर्षीय योजनाएं शुरू किए जाने पर योजना के वित्तपोषण तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में बचतों और निवेश को बढ़ाने के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना करने तथा प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र की ऋण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से रिजर्व बैंक के कार्य और अधिक विशाखीकृत हो गए। साठोत्तर दशक में हुई दो महत्वपूर्ण घटनाओं - जून 1966 में भारतीय रूप के अवमूल्यन तथा जुलाई 1969 में 14 निजी वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीकरण ने - बाद के वर्षों में रिजर्व बैंक के कार्यों को काफी सीमा तक प्रभावित किया, बाह्य क्षेत्र की दृष्टि से। स्थायी विनिमय दरों की ब्रिटेन वुड प्रणाली के टूट जाने तथा 1973-74 के तेल संबंधी आघातों से बड़ी हुई (फ्लोटिंग)(सचल) विनिमय दर व्यवस्थाओं के उभरने के बाद वैश्विक अर्थव्यवस्था में आई अनिश्चितताओं ने विनिमय दर प्रबंधन के लिए गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर दीं तथा भारत एवं अन्य कई विकासशील देशों में भुगतान संतुलन की कठिनाइयों को बढ़ा दिया। सरकार ने विदेशी पूंजी के आगम को विनियमित करने की अपेक्षा विदेशी मुद्रा के संरक्षण के लिए विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (फेरा) 1947 पर अपना ध्यान पुनः केंद्रित किया। सरकारी नीतियों के प्रभावी अनुपालन तथा विद्यमान विधान (कानून) की कार्यप्रणाली में आई कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक परिवर्तनों को समाहित करते हुए फेरा 1973 का मसौदा तैयार किया गया। सत्तर के बाद के दशक में रिजर्व बैंक पर आए मुख्य उत्तरदायित्व देश के दुर्लभ विदेशी मुद्रा भंडार के विनियमन तथा प्रबंधन एवं कृषि और ग्रामीण विकास के लिए अपनी वित्त पोषण संबंधी सुविधाओं की मात्रा तथा क्षेत्रगत व्याप्ति को बढ़ाने का था। अस्सी के बाद के दशक में, मौद्रिक नीति को नया महत्व मिला। कुल मिलाकर

विकास का यह चरण भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक नियंत्रणों और विनियमनों से भरा रहा। 1991 से शुरू हुई अवधि में, जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रणालीगत परिवर्तन देखा गया। देशी और वैश्विक गतिविधियों के संदर्भ में रिजर्व बैंक के कार्यों में एक विशेष अभिमुखीकरण (बदलाव) देखा गया। वित्तीय क्षेत्र में सुधार के उपाय तथा मौद्रिक नीति की धड़कनों के प्रभावी रूप से संचरण (संप्रेषण) को सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय बाजारों के विकास के वास्ते रिजर्व बैंक द्वारा की गई पहलें इस चरण की प्रमुख विशेषताएं रही।

4.4 इस अध्याय का शेष भाग इस प्रकार है - भाग I, II और III में इन तीन चरणों में भारत में केंद्रीय बैंक के कार्यों के रूपांतरण का संक्षिप्त विहगावलोकन है। भाग IV में भारत में केंद्रीय बैंकिंग से प्रासंगिक समसामयिक मुद्दों पर विचार किया गया है; विशेष रूप से, मौद्रिक ढांचे से संबंधित मुद्दों पर, जबकि भाग V में निष्कर्षात्मक टिप्पणियां दी गई हैं।

I स्थापना का चरण (1935-1950)

4.5 रिजर्व बैंक का गठन अप्रैल 1935 में शेरधारकों की संस्था के रूप में किया गया था, तथापि भारत में केंद्रीय बैंकिंग संस्थान के रूप में उसकी उत्पत्ति के इतिहास की खोज अठारवीं शताब्दी में की जा सकती है (बाक्स IV.1)। रिजर्व बैंक का निर्माण उसी प्रकार हुआ जैसे यूरोप में प्रारंभिक केंद्रीय बैंकों का हुआ था। तथापि, इनमें महत्वपूर्ण अंतर यह रहा कि रिजर्व बैंक ने उप-निवेशवादी शासन के अंतर्गत कार्य किया,

जबकि यूरोपीय देशों में केंद्रीय बैंक का स्वामित्व अधिकांशतः राष्ट्रीय सरकारों के पास रहा।

4.6 जैसा कि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के प्रस्तावना में कहा गया है रिजर्व बैंक की स्थापना का उद्देश्य “बैंक नोटों के निर्गम को विनियमित करना तथा भारत में मौद्रिक स्थिरता बनाए रखने की दृष्टि से प्रारक्षित निधियां रखना और आमतौर पर देश की मुद्रा और ऋण प्रणाली का संचालन इसके हित में करना” था। इसके विधान में यथानिर्दिष्ट रिजर्व बैंक के कार्य थे : (क) मुद्रा का निर्गम; (ख) सरकार के लिए बैंक का कार्य करना; तथा (ग) अन्य बैंकों के लिए बैंकर का कार्य करना। कृषि के क्षेत्र अलावा, रिजर्व बैंक के अन्य कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं सौंपी गई थी और वह भी सीमित मात्रा में (भारतीय रिजर्व बैंक 1970)।

4.7 स्थापना के चरण में युद्ध संबंधी तथा युद्धोपरांत अनेक गतिविधियां हुईं जिनमें 1937 में बर्मा (आधुनिक म्यांमार) का अलग होना, 1947 में देश का विभाजन तथा रिजर्व बैंक का राष्ट्रीकरण भी शामिल है, जिन्होंने रिजर्व बैंक के कार्यों के क्षेत्र को ही बदल दिया। बर्मा के अलग होने के बाद, रिजर्व बैंक ने 1942 तक उस देश के मुद्रा प्राधिकरण के रूप में तथा मार्च 1947 तक बर्मा सरकार के लिए बैंकर के रूप में कार्य किया।

1947 में देश का विभाजन होने पर, रिजर्व बैंक ने जून 1948 तक पाकिस्तान सरकार को केंद्रीय बैंकिंग की सेवाएं प्रदान कीं। पाकिस्तान मौद्रिक प्रणाली

बाक्स IV.1

भारत में केंद्रीय बैंकिंग की उत्पत्ति का इतिहास

केंद्रीय बैंक के लक्षणों वाली किसी बैंकिंग संस्था की स्थापना के प्रयासों की खोज हमें दूर 1773 में ले जाती है। ब्रिटिश इंडिया के अंतर्गत बंगाल के गवर्नर ने ‘बंगाल और बिहार में एक सामान्य बैंक’ की स्थापना करने की सिफारिश की थी। 1773 में इस बैंक की स्थापना हुई भी, परंतु यह कुछ समय तक ही चला। 1914 में चेंबरलेन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में (अपने एक सदस्य) जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा तैयार एक व्यापक ज्ञापन को भी शामिल किया, जिसमें तीन प्रेसिडेंसी बैंकों का समामेलन एक केंद्रीय बैंक, जिसका नाम ‘इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया’ होगा, में करने का प्रस्ताव किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद के चरणों में केंद्रीय बैंक जैसी संस्था की आवश्यकता अधिक प्रखर रूप से महसूस की गई और 1920 में इम्पीरियल बैंक अधिनियम पारित किया गया। यह समामेलन अंततः 1921 में लागू किया गया जिसके फलस्वरूप इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया का गठन हुआ। अनिवार्यतः एक वाणिज्यिक बैंक होते हुए भी इम्पीरियल बैंक ने कुछ केंद्रीय बैंकिंग के कार्य किए जैसे सरकार के लिए बैंक तथा बैंकों में लिए बैंक तथापि, करेंसी नोटों के निर्गम तथा विदेशी मुद्रा के प्रबंधन संबंधी केंद्रीय बैंकिंग के बुनियादी कार्य करने का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार का बना रहा।

इस बीच, इन विचारों के साथ केंद्रीय बैंकिंग की धारणा विकसित होती रही कि किसी संस्था के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह वाणिज्यिक बैंकिंग के कार्य भी

करे और देश केंद्रीय बैंक के कार्य भी। 1920 में भारतीय मुद्रा और वित्त पर रॉयल कमीशन (हिल्टन यंग कमीशन) ने यह सिफारिश की कि कार्यों का विभाजन तथा मुद्रा के नियंत्रण तथा ऋण के उत्तरदायित्वों का विभाजन समाप्त किया जाना चाहिए। उक्त कमीशन ने यह सुझाव दिया कि एक केंद्रीय बैंक की स्थापना की जाए जिसे भारतीय रिजर्व बैंक का नाम दिया जाए। जिसका पृथक आस्तित्व सारे देश में बैंकिंग सुविधाओं का बढ़ाने के लिए जरूरी समझा गया।

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना करने के लिए विधेयक विधान सभा में जनवरी 1927 को प्रस्तुत किया गया। परंतु इसके स्वामित्व, गठन, तथा निदेशक मण्डल की संरचना संबंधी विचारों में मतभेद होने के कारण इसे छोड़ दिया गया। भारतीय संविधान संबंधी सुधारों पर श्वेत पत्र (1933) में राजनैतिक प्रभावों से मुक्त भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना करने का प्रस्ताव किया गया। भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931) ने भी रिजर्व बैंक की स्थापना करने की पुरजोर सिफारिश की थी। इन घटनाओं ने 1933 में एक नया विधेयक लाने के लिए प्रेरित किया। यह बिल 1934 में पारित किया गया तथा भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934, 1 जनवरी 1935 से प्रभावी हो गया। रिजर्व बैंक का उद्घाटन 1 अप्रैल 1935 को किया गया।

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक (1970)



तथा रिजर्व बैंक (संशोधन) आदेश 1948 के अनुसार रिजर्व बैंक ने 1 जुलाई 1948 से पाकिस्तान के लिए केंद्रीय बैंक के रूप में कार्य करना बंद कर दिया। भारतीय रिजर्व बैंक (सार्वजनिक स्वामित्व का अंतरण) अधिनियम 1948 के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक का 1 जनवरी 1949 को राष्ट्रीकरण कर दिया गया।

4.8 इनमें से प्रत्येक घटना का असर रिजर्व बैंक की कार्य-पद्धति पर पड़ा है, यद्यपि यह प्रभाव मुख्यतः परंपरागत कार्यों तक सीमित रहा। इस अवधि के दौरान बैंक के कार्य का सर्वाधिक सक्रिय भाग मुद्रा (करेंसी) के प्रबंधन तथा सरकार के लिए बैंकर के कार्यों से संबंधित रहा। विदेशी मुद्रा विनिमय दर की स्थिरता को बनाए रखने के अलावा, मौद्रिक नीति के क्षेत्र में, मुद्रा आपूर्ति या मुद्रास्फीति के प्रबंधन की आवश्यकता नहीं हुई, क्योंकि आर्थिक गतिविधियों का स्तर मुख्यतः उप-निदेश वादी शासन के दौरान निम्न बना रहा।

मुद्रा प्रबंधन

4.9 भारत में आधुनिक अर्थ में कागजी मुद्रा के प्रचलन का मूल अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निजी बैंकों और अर्द्ध सरकारी बैंकों (दि बैंक ऑफ बंगाल, दि बैंक ऑफ बोम्बे तथा दि बैंक ऑफ मद्रास - प्रेसीडेंसी बैंकों द्वारा नोटों के निर्गम में खोजा जा सकता है। 1861 के कागजी मुद्रा अधिनियम ने भारत सरकार को नोट-निर्गम का एकाधिकार प्रदान किया जिससे निजी और प्रेसीडेंसी बैंकों द्वारा नोट जारी करने की प्रथा समाप्त हो गई। सिक्कों को जारी करने को संचालित करने संबंधी सांविधिक प्रावधान भारतीय सिक्का ढलाई अधिनियम 1906 में निर्धारित किए गए हैं। 31 मार्च 1935 तक मुद्रा प्रबंधन का कार्य मुद्रा नियंत्रक के माध्यम से केंद्र सरकार द्वारा अपने विभाग में ही किया गया। अपनी स्थापना होने पर रिजर्व बैंक ने भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 3 के अंतर्गत इस कार्य को अपने पास ले लिया। उपनिवेशवादी अवधि से स्वतंत्र भारत में मुद्रा प्रबंधन के कार्य का रूपांतरण काफी सुचारु रहा। जब तक कि इसके अपने नोट तैयार नहीं हो गए, तब तक रिजर्व बैंक ने भारत सरकार द्वारा जारी नोटों का ही परिचालन करना जारी रखा। रुपए 5 और रुपए 10 के मूल्यवर्ग में रिजर्व बैंक द्वारा नोटों का प्रथम निर्गम जनवरी 1938 में किया गया, जबकि उच्च मूल्यवर्ग के नोटों (₹.100, ₹.1000 तथा ₹.10,000/-) को उसी वर्ष बाद में जारी किया गया।

4.10 भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार नोट निर्गम तथा सामान्य बैंकिंग कारोबार से संबंधित रिजर्व बैंक के कार्य दो अलग-अलग अर्थात् निर्गम और बैंकिंग विभागों द्वारा किए जाते हैं। निर्गम विभाग समय-समय पर जारी प्रचलन में करेंसी नोटों के कुल मूल्य

के लिए उत्तरदायी है और उसके समकक्ष मूल्य के लिए पात्र आस्तियों को रखता है। करेंसी को प्रचलन में लाने तथा उसे प्रचलन से वापस लेने (मुद्रा का प्रसार तथा संकुचन) की प्रक्रिया बैंकिंग विभाग द्वारा की जाती है।

4.11 निर्गम विभाग की आस्तियों में जिनके प्रति भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 33 के अंतर्गत करेंसी नोट जारी किए जाते हैं। स्वर्ण के सिक्के, सोना-चांदी, विदेशी प्रतिभूतियां, रुपए के सिक्के, भारत सरकार की किसी भी मीयाद वाली रुपया प्रतिभूतियां तथा भारत में देय विनिमय बिल और प्रोमेजरी नोट जो रिजर्व बैंक द्वारा खरीदे जाने योग्य हैं, शामिल होते हैं। मूल अधिनियम में जारी किए जाने वाले नोटों के प्रति अनुपातिक रूप में स्वर्ण तथा स्टर्लिंग (बाद में विदेशी) प्रतिभूतियों को रखने का प्रावधान था, जिसमें कुल आस्तियों का कम से कम 40 प्रतिशत भाग सोने के सिक्के, सोना-चांदी और स्टर्लिंग (बाद में विदेशी) प्रतिभूतियां होनी चाहिए। इसमें आगे यह भी निर्धारण किया गया है कि स्वर्ण के सिक्के और सोना-चांदी किसी भी समय, 40 करोड़ रुपए से कम के न हों। इस आनुपातिक आरक्षित निधि प्रणाली के स्थान पर भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा 1956 में न्यूनतम आरक्षित प्रणाली की शुरुआत की गई। न्यूनतम आरक्षित प्रणाली में समग्र दृष्टि से 400 करोड़ रुपए तथा 115 करोड़ रुपए के सोने के सिक्के रखने और इस प्रकार कुल 515 करोड़ रुपए कि न्यूनतम आस्तियां रखने का निर्धारण किया गया है।

4.12 वर्ष 1935 में आस्तियों में करेंसी के लिए यह समर्थन सोने के सिक्के, सोने-चांदी तथा स्टर्लिंग प्रतिभूतियों की दृष्टि से काफी उच्च था। भारत सरकार की रुपया प्रतिभूतियां निर्गम विभाग की कुल प्रतिभूतियों का 27 प्रतिशत बनती हैं। 1935 में प्रचलन में कम करेंसी का होना उस समय न केवल व्यापार के लिए अपेक्षित मुद्रा की कम मात्रा को निर्दिष्ट करता है, बल्कि उस न्यूनतर आधार को भी दर्शाती है जिस पर अर्थव्यवस्था टिकी हुई थी। कुछ सीमा तक, इसने अर्थव्यवस्था में मौद्रीकरण की कमी को भी प्रदर्शित किया। आजादी के बाद, रिजर्व बैंक के उत्तरदायित्व एकल राष्ट्रीय करेंसी तक सीमित रहे तथा भारतीय मुद्रा का विदेशों में कोई संपर्क नहीं था।

4.13 ब्रिटिश इंडिया में बैंक नोटों का निर्गम प्रारंभिक दिनों में रिजर्व बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। करेंसी चेस्ट में विद्यमान धन का लेखांकन रिजर्व बैंक के दैनिक नेमी कार्यकलाप प्रमुख भाग बन गया जिसमें बैंक के कुल स्टाफ का एक तिहाई कर्मचारी लगा रहता था। करेंसी नोटों को जारी करने का कार्य जिसमें भारत सरकार द्वारा जारी एक रुपए के सिक्के तथा छोटे (पूरक) सिक्के तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी नोट शामिल होते हैं - निर्गम विभाग की शाखाओं द्वारा किया जाता था। रिजर्व बैंक सरकार के कोषागार कारोबार में संलग्न

इम्पीरियल बैंक की शाखाओं में तथा सरकारी कोषागारों और उप-कोषागारों में करेंसी चेस्टों को भी बनाए रखता था। यद्यपि करेंसी मुद्रा के प्रबंधन में किसी नवोन्मेष की या तकनीकी सुधार की कोई खास संभावना नहीं थी, फिर भी रिजर्व बैंक ने अपने ऋण तथा खुले बाजार के परिचालनों द्वारा करेंसी प्रणाली में लचीलेपन का उपाय किया।

बैंकों का बैंक

4.14 रिजर्व बैंक का गठन होने से पहले (1921 में गठित) इम्पीरियल बैंक कुछ सीमा तक बैंकों के लिए बैंकर के रूप में भी कार्य करता था। अधिकांश अन्य बैंक इसके पास शेष राशियां रखते थे और आर्थिक निभाव प्राप्त करते थे। यह समाशोधन गृह भी चलाता था और अपनी सभी शाखाओं, अन्य बैंकों तथा जनता को विप्रेषण सुविधाएं भी प्रदान करता था। बैंक वित्त का प्रमुख भाग विदेश व्यापार के वित्त पोषण के लिए होता था, जबकि आंतरिक व्यापार का अंश महत्वपूर्ण नहीं था।

4.15 बैंकों के लिए बैंक के रूप में रिजर्व बैंक का दायित्व अनिवार्यतः दोहरा था। पहला, इसने बैंकिंग प्रणाली के लिए प्रारक्षित निधियों के लिए विशेषकर आपात कालों में अंतिम उधारदाता के रूप में कार्य करने के अलावा मौसमी आवश्यकताओं को पूरा करने में स्रोत के रूप में कार्य किया। दूसरा उत्तरदायित्व यह सुनिश्चित करना था कि बैंकों की स्थापना की जाए तथा उन्हें सुदृढ़ आधारों पर चलाया जाए। उस दिनों में मुख्य बल ऋण के विनियमनों के बजाए जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करने पर रहता था। बैंकिंग क्षेत्र के विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य बैंकिंग विभाग को 1945 में सौंपा गया। तथापि, 1949 में बैंककारी कंपनी अधिनियम (जिसे मार्च 1966 से बैंककारी विनियमन अधिनियम का नया नाम दिया गया) बनने से पहले रिजर्व बैंक के पास काफी शक्तियां नहीं थीं। इसके अलावा, वह 1949 के विधान द्वारा इसे प्रदत्त शक्तियों का युद्धोत्तर बैंकिंग संकट के कारण तत्काल प्रयोग करना भी शुरू नहीं कर सका। अपने परिचालनों के लिए देशी बैंकों के पास सीमित मात्रा में तथा महाजनों के पास व्यापक क्षेत्र और व्याप्ति प्राप्त थी (भारतीय रिजर्व बैंक 1985)।

सरकार का बैंकर

4.16 रिजर्व बैंक के निर्माण से पहले इम्पीरियल बैंक ने सरकार के बैंकर के रूप में अनेक कार्य किए। रिजर्व बैंक की स्थापना होने पर, इम्पीरियल बैंक ने सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना बंद कर दिया, परंतु इसने रिजर्व बैंक के साथ एक करार किया कि वह इसके एक मात्र एजेंट के रूप में उन स्थानों पर अपनी सेवाएं प्रदान करेगा जहाँ उसकी कोई शाखा है, परंतु रिजर्व बैंक के बैंकिंग विभाग की कोई शाखा नहीं है।

केंद्र सरकार के बैंकर के रूप में तथा राज्य सरकारों के साथ करार किए जाने के आधार पर उनके बैंकर के रूप में रिजर्व बैंक इन सरकारों को अनेक प्रकार की सेवाएं प्रदान करता है जैसे सरकारी खाते में धन स्वीकार करना, विभिन्न माध्यमों से निधियों का भुगतान/ आहरण तथा निधियों की वसूली और अंतरण। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की 20, 21 और 21ए धाराएं इन कार्यों के लिए सांविधिक आधार प्रदान करती हैं। वे शर्तें जिनके आधार पर रिजर्व बैंक केंद्र और राज्य सरकारों के लिए बैंकर का कार्य करता है, अलग-अलग करारों में दी गई हैं, जिनके द्वारा रिजर्व बैंक ने इन सरकारों के साथ करार किया था। ऐसा पहला करार अप्रैल 1935 में भारत सरकार के सचिव के साथ किया गया था जिसके द्वारा यह अपेक्षा की गई थी कि रिजर्व बैंक केंद्र सरकार की सामान्य बैंकिंग का कारोबार करेगा। इस करार की अनुपूर्ति समय-समय पर ऐसे पत्रों के आदान-प्रदान द्वारा की गई जिनमें इसके कार्यक्षेत्र में जैसे न्यूनतम शेषराशियां रखना, अर्थोपाय अग्रिमों के रूप में अस्थायी वित्तीय निभाव के प्रावधान तथा कुछ मूल शर्तों में संशोधन शामिल किए गए थे। प्राप्तियों और व्ययों में आई विसंगतियों को पूरा करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17(5) के अंतर्गत रिजर्व बैंक सरकार को अस्थायी अग्रिम प्रदान करता है।

4.17 केंद्र सरकार ने 1935 तक इम्पीरियल बैंक से और उसके बाद रिजर्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम प्राप्त किए हैं। युद्ध के वर्षों के दौरान संचित भारी नकदी शेषराशि के रहते 1943-44 से लगभग एक दशक तक भारत सरकार ने कोई अर्थोपाय अग्रिम नहीं लिए। आर्थिक मंदी के परिणाम स्वरूप तथा भारी अग्रिमों की आवश्यकता के न होने के कारण भी सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक से कम स्तर की आर्थिक सहायता की जरूरत पड़ी। तथापि, सरकार के बैंकर के रूप में उस अवधि के दौरान रिजर्व बैंक के परिचालनों का सर्वाधिक सक्रिय भाग रहा - केंद्र और प्रादेशिक सरकारों के ऋणों के निर्गम तथा उनके खजाना बिलों के निर्गम से संबंधित रहा। 1935 से 1939 की अवधि के दौरान भारत सरकार ने लंदन में एक स्टर्लिंग ऋण जारी किया तथा चार नए रुपए ऋण जारी किए जो मुख्यतः पुराने ऋणों की चुकौती संबंधी देयताओं को पूरा करने के लिए थे। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान देश ने जो स्टर्लिंग का भारी अधिग्रहण किया था उसने स्टर्लिंग ऋण के प्रत्यावर्तन का एक अवसर प्रदान किया और इस बारे में काफी पहल रिजर्व बैंक की ओर से हुई जिसमें प्रत्यावर्तन को क्रियान्वित भी किया गया। जहाँ स्टर्लिंग ऋण का प्रत्यावर्तन युद्ध से पहले भी कुछ सीमित स्तर पर शुरू हो चुका था, परंतु युद्ध के दौरान इसे भारी स्तर पर किया गया। प्रारंभ में यह स्वैच्छिक आधार पर रहा और 1941 से अनिवार्य प्रत्यावर्तन की योजनाओं के माध्यम से। प्रत्यावर्तन के अन्य माध्यमों में शामिल थे - रेलवे वार्षिकियों का निधियन, रेलवे डिबेंचर स्टॉकों की प्राप्ति तथा चेटफील्ड ऋण का परिसमापन। 1937-38 से लेकर 1945-

46 तक 323 मिलियन पौंड के स्टर्लिंग ऋण का प्रत्यावर्तन कर दिया गया था जिसमें से अधिकांश (289 मिलियन पौंड) का प्रत्यावर्तन 1940-43 के दौरान किया गया (भारतीय रिजर्व बैंक, 1970)।

मौद्रिक नीति

4.18 अन्य केंद्रीय बैंकों की तरह रिजर्व बैंक का मूल (स्थायी) कार्य रुपए की स्थिरता को बनाए रखने के लिए मौद्रिक नीति का निर्माण तथा उसको लागू करना है। तथापि, इसकी स्थापना के वर्षों के दौरान अर्थव्यवस्था में ऋण मांग और आपूर्ति को संचालित करने के अलावा कोई औपचारिक मौद्रिक नीति नहीं बनाई गई। बैंक दर (वह मानक दर जिस पर रिजर्व बैंक तथा भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत खरीदने के लिए विनिमय बिलों पात्र अथवा अन्य वाणिज्यिक पत्रों को खरीदने या बट्टाकृत करने के लिए तैयार होता है)। आरक्षित निधियों संबंधी अपेक्षाएं तथा खुले बाजार के परिचालन (प्रतिभूति बाजार में सुव्यवस्थित समन्वय बनाए रखने के लिए नीति के एक भाग के रूप में विशेषकर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को/से प्रतिभूतियां खरीदने/ बेचने के कार्य) ऋण की उपलब्धता को विनियमित करने के मुख्य तंत्र थे। इस अवधि के दौरान केवल एक बार नवंबर 1935 को छोड़कर जब दर को 3.5 प्रतिशत से घटाकर 3.0 प्रतिशत किया गया था, कभी भी बैंक दर को नियंत्रण के साधन के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया। इसके बाद नवंबर 1951 तक यह दर अपरिवर्तित बनी रही। तथापि रिजर्व बैंक ने खुले बाजार के परिचालनों की लिखतों का काफी महत्वपूर्ण रूप में प्रयोग किया। हालांकि बैंक के पास गुणात्मक लिखतों अर्थात् चयनात्मक ऋण नियंत्रण को अपनाने की पर्याप्त शक्तियां थीं, परंतु मूल्य स्थिरता के बने रहते, बैंक परिचालनों के प्रारंभिक चरणों में इसकी कोई जरूरत नहीं समझी गई।

4.19 दूसरे विश्व युद्ध की अवधि के दौरान, 'सस्ती मुद्रा' संबंधी नीति के विद्यमान विचारों की अपेक्षा स्थिर ब्याज दरों की नीति को वरीयता दी गई। इस संबंध में बैंक की नीति संबंधी दृष्टिकोण गवर्नर सर जेम्स टेलर ने फरवरी 1940 में अपने सार्वजनिक भाषण में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था। उनके भाषण से उद्धरण है :-

लोग समस्याओं को अत्यधिक सरल करके देखने के बहुत ज्यादा आदी हैं। बहुत ज्यादा मौद्रिक नियंत्रण का तात्पर्य है सस्ती मुद्रा, तथा इस देश में और अन्यत्र भी, दोनों जगह अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि जितना ही नियंत्रण बेहतर होगा उतना ही वह मुद्रा को सस्ती बनाएगा। यह निश्चित रूप से भ्रामक है। नियंत्रक-प्राधिकारी का कार्य - जहाँ तक संभव हो, उतना करना है जितना कि मुक्त रूप से परिचालन करने वाले बाजारों ने यदि उन पर उनके नियंत्रण से बाहर असामान्य दबावों के न रहते या भविष्य में देख सकने की उनकी योग्यता के आधार उन्होंने स्वयं अपने लिए किया होता। नियंत्रण न रहने की स्थिति में, ये ऊर्ध्वमुखी

और निम्नमुखी भारी उतार-चढ़ाव के रूप में प्रदर्शित होते। स्पष्टतः यह बेहतर है कि इन उतार चढ़ावों को नियंत्रित करने तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रक्रिया-तंत्र विद्यमान है। यदि थोड़ा और आगे जाकर देखा जाए और इन सैद्धांतिक नीतियों को लागू करने के इस प्रक्रिया-तंत्र का प्रयोग करने का प्रयास करें और वह कार्य करें, जो बाजार यदि उस पर छोड़ दिया जाए तो सामान्य परिस्थितियों में करें। प्रभावी ब्याज दर में काफी ज्यादा कटौती से निवेश की आदत को मिटा देने की ओर ले जाएगी, इस स्थिति में एक ही विकल्प उपलब्ध है और वह है - मुद्रास्फीति। नियंत्रक प्राधिकारी को इन कारकों पर विचार करना होगा। इसे मुद्रा (धन) को समतल स्तर पर रखना पड़ता है। अंततः, कोई उच्च स्तर की तकनीक अपेक्षित नहीं है, यदि संपूर्ण मौद्रिक नीति को मुद्रण प्रेसों के लिए पूर्णतः स्पष्ट कर दिया जाए। (भारतीय रिजर्व बैंक 1970)।

4.20 स्थिर ब्याज दरों की नीति सरकार द्वारा उधार लेने की शर्तों में निश्चित दर के निर्धारण में भी झलकती थी। सरकारी बांडों की बिक्री की रणनीति समय-समय पर अलग-अलग रही है जो नई प्रतिभूति जारी करने तथा किसी विद्यमान ऋण के पुनः जारी करने, उसकी मीयाद निर्गम-मूल्य, जारी करने के समय तथा इस निर्णय पर कि ऋण को एक निश्चित अवधि तक ही खुला रखा जाए या उसकी समय-सीमा को खुला रखा जाए के बीच विकल्पों पर निर्भर रही है। मौटे तौर पर युद्ध का वित्त पोषण 3 प्रतिशत की कूपन दर पर किया गया था, दीर्घावधि ऋणों के लिए निर्गम मूल्य को क्रमिक रूप से बढ़ाया जाता था जिससे इसे 3 प्रतिशत की प्रभावी आय के आधार के नजदीक रखा जा सके।

4.21 रोचक रूप में, गवर्नर टेलर (ऊपर उद्धृत) ने जहाँ 1942-43 के लिए ऋण-कार्यक्रम पर विचार करते हुए 3 प्रतिशत 1951-54 ऋण को सममूल्य पर पुनः जारी करने तथा 3 प्रतिशत 1967-69 के दीर्घावधि ऋण को 31/3 प्रतिशत की प्रभावी ब्याज दर से लगभग 95 रुपए पर जारी करने का सुझाव दिया था, वह भी ऐसे समय में, जब सरकार ब्याज आय के आधार को 3 प्रतिशत से नीचे लाने पर विचार कर रही थी, वह 12 वर्षीय 21/2 प्रतिशत के मीयादी ऋण के लिए 98 रुपए पर और 25 वर्षीय 3 प्रतिशत ऋण को 98 रुपए पर जारी करने पर विचार कर रही थी, जिसमें प्रभावी ब्याज दर क्रमशः लगभग 2 3/4 प्रतिशत और 3 1/8 प्रतिशत बैठती है। उक्त गवर्नर ने जो "संभवतः इस कटौती के मुद्रास्फीतिकारी प्रभाव के बारे में चिंतित थे" इस मामले में बहुत धीरे चलने को वरीयता दी (भारतीय रिजर्व बैंक 1970)।

4.22 1943 में, बढ़ती हुई मुद्रास्फीति को देखते हुए, विभिन्न क्षेत्रों से ऐसे सुझाव दिए गए कि सरकारी बांडों में निवेश को प्रेरित करने की दृष्टि से ब्याज दर को बढ़ा दिया जाए, परंतु रिजर्व बैंक ने इसका विरोध

किया। बैंक के इस दृष्टिकोण से सरकार को अप्रैल 1943 के पत्र में बताया गया था। “इस स्तर पर ब्याज दरों को बढ़ाने के प्रयासों के परिणाम उन लोगों के लिए, जिन्होंने अब तक सरकारी ऋणों में निवेश किया है, परेशानी का कारण बन सकता है, इस तथ्य के अलावा, कि उच्च ब्याज दर बाद की पीढ़ियों पर भार को बढ़ा देती है, इस बात की भी सदा संभावना रहती है, कि ऐसी कोई वृद्धि अपने तात्कालिक प्रभाव में असफल हो जाए और अपने स्वयं के प्रयोजन को ही निष्फल कर दे।” रिजर्व बैंक के इस आशय को दर्शाते हुए कि वह सस्ती दर पर मुद्रा (धन) लेने का भी पक्षधर नहीं है। उक्त पत्र में यह उल्लेख किया गया था - ब्याज दर को बढ़ाने के लिए दिए गए तर्क की अकाट्यता को इस सीमा तक स्वीकृत किया जा सकता है कि वर्तमान स्थितियों में धन उधार लेने को और सस्ता करने की दिशा में आगे बढ़ना संभव नहीं लगता है और यह कि सरकार दीर्घावधि ब्याज दरों को वर्तमान स्तर पर ही रखने के लिए अपने आपको सीमित रखे (भारतीय रिजर्व बैंक 1970)।

II विकास चरण - (1951 - 1990)

4.23 देश में पंचवर्षीय योजनाओं के शुरू होने के साथ ही रिजर्व बैंक ने अनेक महत्वपूर्ण विकासात्मक और संवर्धनात्मक भूमिकाएं अपने हाथ में ले लीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में मूल्य स्थिरता बनाए रखने तथा निवेश और कारोबारी गतिविधियों के विनियमन के लिए मौद्रिक और ऋण नीति की भूमिका पर जोर दिया गया। तदनुसार, रिजर्व बैंक से यह अपेक्षा की गई कि वह योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप बैंकिंग प्रणाली को ढालकर आर्थिक विकास के संवर्धन में अपनी भूमिका अदा करे। अतः रिजर्व बैंक के समक्ष यह बुनियादी कार्यक्रम था कि वह वित्तीय मध्यस्थन संस्थाओं का संवर्धन करके संभावित बचतों को जुटाने के लिए एक उपयुक्त संस्थागत ढांचा स्थापित करे तथा व्यापक क्षेत्र वाली वित्तीय आस्तियों का सृजन करके, एक ऐसी ऋण संरचना को अपनाए जो इन संसाधनों का प्रभावी रूप से निवेश करके विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक हो।

4.24 इस समय तक, रिजर्व बैंक ने परंपरागत केंद्रीय बैंकिंग के कार्यों को करने में पर्याप्त अनुभव और दक्षता हासिल कर ली थी। इसने मुद्रा बाजार के ऊपर अच्छा खासा नियंत्रण प्राप्त कर लिया था (भारतीय रिजर्व बैंक 1985)। इस प्रकार संगठनात्मक रूप से देश की आर्थिक वृद्धि को संवर्धित करने में अपनी उचित भूमिका का निर्वाह करने में रिजर्व बैंक पर्याप्त रूप से सक्षम था।

4.25 आयोजना की अवधि ने ऐसी नई विकासात्मक और संवर्धनात्मक गतिविधियों की दिशा में रिजर्व बैंक के उत्तरदायित्वों में उल्लेखनीय वृद्धि देखी जो कि सामान्यतः किसी केंद्रीय बैंकिंग की गतिविधियों के क्षेत्र से बाहर थी। बैंक के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण कार्य था एक स्वस्थ वित्तीय

संरचना विकसित करने के लिए एक स्थिर वित्तीय परिवेश बनाए रखने के अलावा बचतों का संवर्धन करने और योजना की प्राथमिकताओं के अनुरूप विभिन्न खंडों में उनके नियोजन के लिए संस्थाओं का निर्माण करना। 1950 में भारतीय संविधान के अपनाए जाने तथा 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम के बनने से जिसने मुद्रा और बैंकिंग परिचालनों में समन्वय को प्रोन्नत किया, सरकार के लिए बैंक के रूप में रिजर्व बैंक की भूमिका के क्षेत्र को बढ़ाने का काम किया। इस विकास के चरण में बैंक के कार्यों के क्षेत्र में परिवर्तन लाने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं में सामाजिक नियंत्रण तथा निजी वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीकरण की घटनाएं शामिल थीं। इस अवधि की एक उल्लेखनीय विशेषता विकासात्मक कार्यों तथा वित्तीय स्थिरता के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता को भरने वाले एक औपचारिक मौद्रिक नीति के ढांचे की शुरुआत भी रही।

सरकार के लिए बैंक

4.26 योजना अवधि के दौरान रिजर्व बैंक के लिए एक महत्वपूर्ण विकासात्मक लक्ष्य था - योजना-प्रक्रिया में सरकार के संसाधनों के अंतराल की भरपाई करना - यह सरकार के लिए बैंक के रूप में इसकी भूमिका में वृद्धि थी। 1951 में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में एक नई धारा 21(क) जोड़कर संशोधन किया गया जो रिजर्व बैंक को प्राधिकृत करती है कि वह भाग ‘ख’ वाले राज्यों (पूर्ववर्ती राजशाही वाले राज्यों) की सरकारों के साथ करार करके उन सरकारों के लिए बैंक के रूप में कार्य करे और उनके लोक ऋणों और ऋणों को जारी करने के कार्य का प्रबंधन करे। 1 नवंबर 1956 को राज्यों के पुनर्गठन अधिनियम के बन जाने पर भाग ‘क’ के राज्यों (पूर्ववर्ती ब्रिटिश इंडिया वाले राज्यों) और भाग ‘ख’ वाले राज्यों के वर्गीकरण को समाप्त करके उनके स्थायी रूप में समेकन को चरम सीमा तक बढ़ा दिया गया (भारतीय रिजर्व बैंक 1985)।

4.27 योजना के वित्त पोषण में रिजर्व बैंक की भूमिका घाटे के वित्त पोषण के रूप में विकसित हुई। जनवरी 1955 में, केंद्र सरकार के साथ पत्राचार करके, रिजर्व बैंक इसके लिए सहमत हुआ कि जब कभी भी किसी सप्ताह की समाप्ति पर केंद्र सरकार की शेष राशि 50 करोड़ रुपए से कम रह जाएगी तो रिजर्व बैंक उसकी पूर्ति करेगा। इस करार ने वस्तुतः भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17(5) में समर्थनकारी प्रावधान करके उसे आगे बढ़ने की राह बनाई जिसने रिजर्व बैंक को प्राधिकृत किया कि वह केंद्र और राज्य सरकारों को अग्रिम प्रदान कर सकेगा जिसे अधिकतम तीन माहों में उन्हें वापस चुकाना होगा। इन अग्रिमों के बराबर की राशि के तदर्थ खजाना बिल केंद्र सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के लिए जारी किए गए जो निर्गम विभाग में रखे गए। जबकि किसी केंद्रीय बैंक के लिए यह परंपरागत बात है कि वह सरकार की प्राप्तियों और व्ययों के बीच आई विसंगतियों को दूर करने के लिए सरकार को अल्पावधिक अग्रिम प्रदान

करे, परंतु 1955 से इस परंपरा को नेमी स्वरूप का बना दिया गया, जबसे केंद्र सरकार को रिजर्व बैंक से असीमित रूप में उधार लेने का अधिकार प्रदान कर दिया (बालचंद्रन 1998)। वर्षों से तदर्थ खजाना बिल निर्मित करके सरकार की ओर बकाया राशियों की प्रतिपूर्ति करने की परंपरा स्थायी स्वरूप की हो गई तथा यह सरकार के खर्चों को वित्तपोषित करने का एक वैकल्पिक साधन बन गया। इसी प्रकार राज्य सरकारों ने भी रिजर्व बैंक से अनधिकृत रूप से ओवरड्राफ्ट लेने शुरू कर दिए। इस प्रकार रिजर्व बैंक न केवल केंद्र सरकार के लिए वरन अप्रत्यक्ष रूप से राज्य सरकारों के लिए भी सस्ते ऋण का एक स्रोत बन गया। योजना के वित्तपोषण से भी रिजर्व बैंक के पास रखे विदेशी मुद्रा को भारी मात्रा में आहरण करने को आवश्यक बना दिया। इसके परिणामस्वरूप रिजर्व बैंक को उपयुक्त कानूनी उपाय करने पड़े जिनसे कि इस प्रकार के आहरणों के दुष्प्रभाव को रोका जा सके तथा रिजर्व बैंक इसके लिए कोई कार्रवाई करने में सक्षम हो सके। भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत आनुपातिक प्रारक्षित प्रणाली के स्थान पर विदेशी मुद्रा की न्यूनतम राशि रखने की प्रणाली ने बढ़ती हुई करेंसी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए नोट जारी करने की पद्धति को अधिक लचीलापन प्रदान किया। साथ ही साथ, व्यापार और उद्योग को ऋण मंजूर करने के लिए बैंकिंग प्रणाली की सामर्थ्य पर भारी जन-अपेक्षाओं के प्रभाव को विनियमित करने के लिए प्रारक्षित निधियों की मात्रा को घटाने-बढ़ाने की अतिरिक्त शक्तियां भी रिजर्व बैंक ने प्राप्त कर ली थीं। इन भागों के लिए पुनर्वित्त की उपलब्धता को जनवरी और मार्च 1963 में और उदार बना दिया गया। 1960 की अवधि से वाणिज्यिक बैंकों का (उधार तथा जमाराशियों दोनों की) ब्याज दरों को रिजर्व बैंक द्वारा विनियमित करने की भी शुरुआत हुई।

4.28 बैंकिंग कंपनी अधिनियम 1949 के बन जाने से इसने यह सुनिश्चित करने के लिए कि वाणिज्यिक बैंकों की स्थापना और उनकी कार्यप्रणाली दृढ़ आधारों पर चल रही है, रिजर्व बैंक को वाणिज्यिक बैंकों के परिचालनों का पर्यवेक्षण करने का विशेष अधिकार प्रदान किया। 1951 तक, वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंकों के लिए यह सुस्थापित परंपरा बन चुकी थी कि वे आर्थिक निभाव (सहायता) के लिए रिजर्व बैंक के पास आएंगे। इस रूप में, रिजर्व बैंक इस स्थिति में था कि वह एक ऐसी ऋण नीति अपनाए जो विस्तारकारी तथा विनियामक दोनों प्रकार की हो, जो मौटे तौर पर योजनाओं में निर्दिष्ट निवेश की प्राथमिकताओं के अनुरूप हो। 1956 में, रिजर्व बैंक को ये शक्तियां दी गई कि वह व्यापक सीमा के भीतर, सांविधिक प्रारक्षित राशियों की अपेक्षाओं को जो कि वाणिज्यिक बैंक इसके पास रखेंगे, घटा-बढ़े सके। रिजर्व बैंक ने ये प्रयास भी किए कि वह ऋण की आयोजना करे, कुल ऋण की मात्रा के सृजन के संबंध में वाणिज्यिक बैंकों का ऋण का मौसमवार और क्षेत्र वार वितरण करने तथा ब्याज दर संरचना में प्रोत्साहन और दंडों को लागू करने की प्रणाली में मार्गदर्शन करे। इसके अलावा, रिजर्व बैंक ने

बैंकों को उनकी प्रारक्षित अपेक्षाओं की ऋण के विस्तार और संकुचन में मौसमी घट-बढ़ के माध्यम से मौसमी मांग को पूरा करने के लिए, बैंकों को अस्थायी आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए प्रणाली - तंत्र भी स्थापित किया। इस प्रयोजन के लिए, रिजर्व बैंक ने बहुत पहले अर्थात् जनवरी 1952 में बिल मार्केट योजना बनाई जिसने वाणिज्यिक बैंकों को अपने अग्रिमों को मीयादी बिलों में परिवर्तित अपनी प्रतिभूतियों पर रिजर्व बैंक से उधार लेने में समर्थ बनाया।

संस्था-निर्माण

4.29 एक प्रमुख कार्य जो रिजर्व बैंक को सौंपा गया वह था। आयोजना के प्रयासों को पूरा करने के लिए आवश्यक संस्थागत प्रणाली-तंत्र स्थापित करना। यह बहुत महत्वपूर्ण था, विशेषकर दुर्बल वित्तीय प्रणाली के संदर्भ में, जबकि वाणिज्यिक बैंकिंग की संरचना अविकसित और विकासशील हो। ग्रामीण भारत में संगठित ऋण संस्थाओं की उपस्थिति नाम-मात्र की है। इस पृष्ठभूमि में, ग्रामीण बैंकिंग और ऋण के लिए एक सुदृढ़ तथा पर्याप्त संस्थागत संरचना खड़ी करना अत्यधिक महत्वपूर्ण था।

4.30 संस्थागत निर्माण के कार्य की कमी को पूरा करने के लिए रिजर्व बैंक ने ग्रामीण ऋण के प्रवाह को बढ़ाने के लिए विशेष उत्तरदायित्व को भी संभाला। 1951 से शुरू हुई, कृषि ऋण की नीति का निर्माण कृषि ऋण के लिए रिजर्व बैंक के उत्तरदायित्वों में एक प्रमुख मील का पत्थर था। रिजर्व बैंक ने 1951 में गठित समिति (अध्यक्ष : ए.डी.गोरवाला) के मार्गदर्शन में एक व्यापक अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण कराया। उक्त निर्देशन समिति, जिसने अपनी रिपोर्ट 1954 में प्रस्तुत की थी, की सिफारिशों ने बाद के वर्षों के लिए न केवल रिजर्व बैंक की कृषि ऋण नीति के निर्माण के लिए, बल्कि केंद्र और राज्य सरकारों की नीतियों के संबंध में भी गति और दिशा निदेश निश्चित किए। उक्त समिति की सिफारिशों ने इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया तथा पूर्ववर्ती राजसी सरकारों से संबद्ध बैंकों का राष्ट्रीकरण करने, अल्पावधिक सहकारी ऋण संरचना का पुनर्विन्यास करने तथा कृषि विकास के लिए दीर्घावधिक ऋणों की विशेषज्ञता वाली संस्थाओं के पुनर्गठन की ओर बढ़ाया (भारतीय रिजर्व बैंक, 1955 तथा बालचन्द्रन, 1998)। कृषि ऋण विभाग की स्थापना मुख्यतः बैंक के परिचालनों और कृषि ऋण के कार्य में संलग्न अन्य संस्थाओं के परिचालनों के बीच समन्वय करने के उद्देश्य के साथ की गई। 1955 में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन किया गया ताकि बैंक दो निधियां राष्ट्रीय कृषि ऋण (दीर्घावधिक परिचालन) निधि तथा राष्ट्रीय कृषि ऋण (स्थिरीकरण) निधि-गठित कर सके। कृषि के लिए मध्यावधिक और दीर्घावधिक ऋण उपलब्ध कराने के लिए रिजर्व बैंक ने 1963 में कृषि पुनर्वित्त निगम की स्थापना की। 12 जुलाई 1982 को राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के स्थापित हो जाने से ग्रामीण ऋण के संबंध में रिजर्व बैंक का ध्यान समन्वय पर अधिक रहा है। इस संबंध में रिजर्व बैंक की भूमिका 1982 के बाद बढ़ी जिसमें ग्रामीण आयोजना और ऋण विभाग का गठन हुआ।

4.31 एक सुविकसित पूंजी बाजार के न होने की स्थिति में, रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर उद्योग को मीयादी ऋण जुटाने के लिए सुविधाओं को और व्यापक बनाने के लिए तथा बचतों को संस्थागत रूप प्रदान करने के लिए अनेक विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं स्थापित करने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। इनके उदाहरण हैं - 1964 में स्थापित भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आइडीबीआई), और 1964 में ही स्थापित भारतीय यूनिट ट्रस्ट (यूटीआई)। यूटीआई का अस्तित्व औद्योगिक निवेश के लिए अल्प बचतों को जुटाने तथा औद्योगिक शेयर के स्वामित्व का लोकतंत्रीकरण करने के प्रयासों में सहायता करने के लिए रिजर्व बैंक की प्रशाखाओं के रूप में हुआ।

4.32 संस्थागत आधार तैयार करने की पहलों के अलावा, रिजर्व बैंक ने विकास बैंकिंग के लिए उपयोग में लाने हेतु राष्ट्रीय औद्योगिक ऋण (दीर्घावधिक परिचालन) निधि के नाम से एक निधि का गठन अपने लाभ से वार्षिक आबंटन के प्रावधान के साथ किया। रिजर्व बैंक ने केंद्र सरकार के एजेंट के रूप में लघु उद्योग क्षेत्र (एसएसआई) के लिए विभिन्न गारंटी योजनाएं भी चलाई जिसकी संरचना ऐसे लघु क्षेत्र की इकाइयों के लिए उधार देने वाले बैंकों तथा अन्य संस्थाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए की गई है। भारतीय निर्यात-आयात बैंक (एग्जिम बैंक) जनवरी 1982 में स्थापित किया गया जिसे भारतीय औद्योगिक एवं विकास बैंक के निर्यात-वित्त संबंधी कार्य अंतरित कर दिए गए। एग्जिम बैंक भी रिजर्व बैंक द्वारा परिचालित राष्ट्रीय औद्योगिक ऋण (दीर्घावधि-परिचालन) निधि से ऋण और अग्रिम लेने का पात्र बनाया गया।

4.33 जमा बीमा निगम (डीआईसी) जो पूर्णतः रिजर्व बैंक की अपनी पूर्णतः स्वाधिकृत सहायक संस्था है, 1962 में अपने परिचालन शुरू किए। उस वर्ष 287 बैंक इसके पास बीमाकृत बैंकों के रूप में पंजीकृत थे। 1967 की समाप्ति तक बीमाकृत बैंकों की संख्या घटकर 100 रह गई। व्यापक रूप में यह बैंकिंग क्षेत्र को अधिक अर्थ सक्षम बनाने के लिए छोटे और वित्तीय रूप से कमजोर बैंकों के पुनर्गठन और समामेलन की रिजर्व बैंक की नीति के कारण हुआ। 1967 तक, उक्त निगम की देयता ग्यारह बैंकों के मामले में मांगी गई। [बैंक ऑफ चाइना, कलकत्ता (1963), बैंक ऑफ अलगापुरी लि. अलगापुरी (1963), यूनिटी बैंक लि. मद्रास (1963), मैट्रोपोलिटन बैंक लि., कलकत्ता (1064), उन्नाव कमर्शियल बैंक लि. उन्नाव (1964), कोचिन नायर बैंक लि., त्रिचूर (1964), लेटिन क्रिश्चियन बैंक लि. एर्नाकुलम (1964) खदिसाउदर्न बैंक लि., कलकत्ता (1964), श्री जादेया शंकरलिंग बैंक लि., बीजापुर (1965), नेशनल बैंक ऑफ पाकिस्तान, कलकत्ता (1966), हबीब बैंक, लि बॉम्बे (1966)]। इनमें से तीन बैंकों के लाइसेंस (अर्थात् हबीब बैंक, नेशनल बैंक ऑफ पाकिस्तान तथा बैंक ऑफ चाइना) के लासेंस वित्तीय अर्थसक्षमता से इतर अन्य कारणों से रद्द कर दिए गए। 1966 के अंत में, इन ग्यारह बैंकों को अदा की गई राशि रूप 56.83 लाख बैठती है, जिसमें से रूप

39.85 लाख डीआईसी द्वारा वसूल की गई थी और उक्त निगम का समग्रतः जोखिम संबंधी अनुभव 'अनुकूल' रहा।

4.34 जमा बीमा से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण गतिविधियां 1967-81 के दौरान हुईं। 1968 में डीआईसी अधिनियम को संशोधित कर इसकी बीमा योजना को बढ़ाकर सहकारी बैंकों के पास रखी जमाराशियों पर भी लागू कर दिया गया। इस चरण में बैंक जमाराशियों में विस्तार तथा बीमाकृत जमाराशियों की व्याप्ति में क्रमिक वृद्धि के फलस्वरूप जमा बीमा निधियों में सुदृढ़ वृद्धि और समेकन देखा गया। रिजर्व बैंक ने 1971 में ऋण गारंटी निगम के नाम से एक पब्लिक लि. कंपनी का गठन किया। ऋण गारंटी निगम द्वारा शुरू की गई ऋण गारंटी योजनाओं का मुख्य जोर वाणिज्यिक बैंकों को अब तक उपेक्षित क्षेत्रों, विशेषकर, गैर औद्योगिक गतिविधियों में लगी समाज के कमजोर तबकों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करना था। इन दोनों संगठनों अर्थात् डीआईसी और भारतीय ऋण गारंटी निगम लि. का 1978 में विलियन करके भारतीय निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारंटी निगम (डीआईसीजीसी) का गठन किया गया जिसके "दोहरे और सजातीय" उद्देश्य थे - छोटे बैंक जमाकर्ताओं को संरक्षण प्रदान करना तथा समाज के कमजोर तबके के छोटे उधारकर्ताओं की कुछ श्रेणियों को दी गई ऋण सुविधाओं को गारंटी की सुरक्षा प्रदान करना।

4.35 बैंकिंग तथा अन्य विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना का रिजर्व बैंक की कार्यप्रणाली के लिए उल्लेखनीय निहितार्थ थे। इस रूप में इसने वित्तीय क्षेत्र की व्याप्ति को बढ़ा दिया तथा रिजर्व बैंक की पर्यवेक्षी भूमिका को भी बढ़ा दिया। संस्थाओं की स्थापना मुख्य रूप से निम्नलिखित दृष्टियों से मौद्रिक नीति की काफी सीमा तक अनुपूरक रही। पहली, अपनी अंतःप्रेरणाओं या आवेगों को संप्रेषित करने के लिए प्रभावी सरणियां प्रदान करके एक सुविकसित वित्तीय प्रणाली ने रिजर्व बैंक को अपनी सामान्य और चुनिंदा ऋण नीतियों को कार्यान्वित करने में सहायता की। दूसरी, जितनी सीमा तक बचतों की वृद्धि करने में तथा उन्हें जुटाने में बैंकों की योग्यता में वृद्धि हुई, उतनी ही सीमा तक आर्थिक निभाव के लिए रिजर्व बैंक पर उनकी निर्भरता में कमी आई। एक बार बैंकिंग प्रणाली अपने ही संसाधनों से ऋण की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में बेहतर रूप से समर्थ हो गई तो मौद्रिक नीति के परंपरागत साधनों के पूरी तरह से खुलकर खेलने की अपेक्षा की जा सकती है। तीसरी, संस्थागत एजेंसियों द्वारा बचतों के संग्रहण से अर्थव्यवस्था में विद्यमान निवेश-योग्य निधियों की मांग तथा उनकी आपूर्ति के बीच बेहतर एकाभिमुखता प्राप्त हुई।

सामाजिक नियंत्रण और राष्ट्रीकरण

4.36 संस्थागत ऋण सुपुर्दगी प्रणाली-तंत्र को सुदृढ़ करने में जो घटनाएं महत्वपूर्ण थीं, वे थीं, - 1967 में शुरू की गई 'सामाजिक नियंत्रण'

तथा 1969 में 14 निजी वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीकरण की नीति जिसे विकास आयोजना की प्रक्रिया में रिजर्व बैंक के उत्तरदायित्वों को अपना लिया। बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की परिकल्पना “बैंकिंग विधि (संशोधन) विधेयक 1967” द्वारा की गई जिसे बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949, भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934, तथा भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 के कुछ प्रावधानों में संशोधन करना चाहा था। इसके लिए आवश्यकता को उस प्रमुख खामी के संदर्भ में महसूस की गई जिसमें अनेक ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अभी भी बैंकिंग की सुविधाएं अपर्याप्त बनी हुई थीं। भले ही योजना-अवधि के दौरान भारतीय बैंकिंग प्रणाली ने कार्यमूलक और भौगोलिक व्याप्ति इन दोनों ही दृष्टियों से काफी प्रगति कर ली थी। साथ ही, भारी उद्योग और बड़े तथा स्थापित कारोबारों को ऋण सुविधाओं का प्रमुख भाग प्राप्त करते हुए देखा गया जो कि वरीयता प्राप्त क्षेत्रों जैसे कृषि, लघु उद्योग, और निर्यातों के हितों के प्रतिकूल था। तदनुसार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से बैंक ऋण की मांग का आकलन करने, उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप तथा प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रों की अपेक्षाओं के अनुरूप ऋण और अग्रिमों की स्वीकृति के लिए प्राथमिकताएं निर्धारित करने तथा समग्र संसाधनों के दक्षतापूर्वक उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न संस्थागत एजेंसियों की उधार और निवेश की नीतियों में समन्वय लाने के लिए दिसंबर 1967 में एक राष्ट्रीय ऋण परिषद (एनसीसी) स्थापित की गई।

4.37 भारत सरकारने बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अधिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1969 के माध्यम से 50 करोड़ रुपए और उससे अधिक की जमाराशियों वाले 14 प्रमुख भारतीय वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीकरण कर दिया। बैंक राष्ट्रीकरण के उद्देश्य सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य से भी काफी आगे तक गए जैसा कि अधिनियम के प्रस्तावना में कहा गया है इस “अधिग्रहण का उद्देश्य था” अर्थव्यवस्था की ऊचाइयों को नियंत्रित करना तथा राष्ट्रीय नीति और उद्देश्यों के अनुरूप अर्थव्यवस्था की विकास की आवश्यकताओं को प्रणाली रूप से पूरा करना तथा बेहतर रूप में सेवाएं प्रदान करना। सार रूप में, बैंकों के राष्ट्रीकरण का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं के विस्तार की गति को तेज करना तथा कृषि एवं समाज के कमजोर तबकों को बैंक ऋण के प्रवाह को बढ़ाना थी (भारतीय रिजर्व बैंक, 1985)।

4.38 राष्ट्रीकरण से बैंकों का स्वामित्व केंद्र सरकार के पास आ गया जबकि बैंकों के परिचालनात्मक पहलुओं पर रिजर्व बैंक का नियंत्रण जारी रहा। इससे बैंकिंग प्रणाली पर ‘केंद्रीकृत नियंत्रण और दिशा निदेश’ बनाए रखने का मार्ग खुला। जहाँ राष्ट्रीकरण का मुख्य उद्देश्य था कि ऋण पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक दायरे में लोगों को प्राप्त हो, वहाँ रिजर्व बैंक का मुख्य कार्य था राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा इसकी नीतियों का अनुपालन सुनिश्चित किया जाना। इसके लिए संस्थागत व्यवस्थाओं में उल्लेखनीय परिवर्तनों

तथा बैंकिंग प्रणाली पर और अधिक कठोर नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण की जरूरत थी।

4.39 परिणामों की दृष्टि से, राष्ट्रीकरण का यह चरण बैंकों के माध्यम से निजी बचतों का संग्रहण करने में काफी सफल रहा। इस प्रकार संग्रहीत बचत राशियां सार्वजनिक उधार की मांगों की पूर्ति करने के लिए तथा अब तक उपेक्षित वास्तविक ऋण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग में लाई गई। इस सफलता ने 1980 में बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अधिग्रहण तथा अंतरण) अध्यादेश 1980 के द्वारा 6 और निजी वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीकरण की ओर प्रेरित किया। राष्ट्रीकरण के इस दूसरे चरण के साथ, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के पास सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कुल जमाराशियों की 90 प्रतिशत से अधिक की जमाराशियां थीं। जहाँ 1969 में बैंकों के राष्ट्रीकरण के पीछे वह पक्षकार नहीं था, वहीं, 1980 में राष्ट्रीकरण के दूसरे चरण के लिए उसने पहल की थी। इसका कारण था - निजी बैंकों पर पर्यवेक्षण की आवश्यकता का होना - यह सुनिश्चित करने के लिए वे सामाजिक नियंत्रण के मानदंडों का अनुपालन कर रहे हैं, इस सच्चाई के होते हुए कि उसके छोटे-छोटे निजी बैंक बढ़कर काफी बड़े हो गए हैं और व्यवहार में उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखना आसान नहीं रख गया था (भारतीय रिजर्व बैंक 2005 क)।

ऋण नियंत्रण

4.40 1970 के दशक से, रिजर्व बैंक के समक्ष दोहरी समस्याएं थीं - आर्थिक वृद्धि के लिए वित्तपोषण के लिए प्रावधान करना तथा ऋण की तीव्र वृद्धि के कारण उभरने वाली मुद्रा आपूर्ति में तीव्र मांग के चलते मूल्य स्थिरता को बनाए रखना। बढ़ा हुआ सार्वजनिक (सरकारी) खर्च तथा साथ ही साथ आकस्मिक रूप से बैंकों की जमाराशियों में आई वृद्धि ने मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता पर भारी दबाव डालना शुरू कर दिया। रिजर्व बैंक को इस दुधारी तेज समस्या से निपटने के लिए एक संतुलनकारी दृष्टिकोण को अपनाना पड़ा तथा आर्थिक वृद्धि की तेज दर को प्राप्त करने के लिए ऋण के लिए प्रावधान करने और मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करने के दोहरे उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ऋण के नियंत्रित विस्तार की नीति को अपनाना पड़ा।

4.41 इस संदर्भ में मुख्य मुद्दा था कि ऋण नियंत्रण के परंपरागत साधन अर्थात् बैंक दर और खुले बाजार के परिचालन विस्तारित ऋण सृजन में बैंकों की शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए अपर्याप्त पाए गए। यह तथ्य कि वाणिज्यिक बैंकों की जमाराशियां घाटे के वित्तपोषण के प्रभाव के अंतर्गत तेजी से बढ़ रही थीं तथा वाणिज्यिक बैंकों को आर्थिक सहायता के लिए केंद्रीय बैंक के पास आने की जरूरत नहीं थी, अतः मौद्रिक नीति के एक साधन के रूप में बैंक दर कम प्रभावी रह गई थी। इसके अलावा, सरकारी प्रतिभूतियों के लिए एक मुख्य और व्यापक

आधार वाले बाजार की अनुपस्थिति में, मौद्रिक नीति के परिचालन के एक साधन के रूप में खुले बाजार के परिचालन की व्याप्ति भी अपेक्षाकृत सीमित रह गई थी। इस स्थिति ने ऋण नियंत्रण के अतिरिक्त साधनों की शुरुआत करने की आवश्यकता पैदा कर दी।

4.42 एक महत्वपूर्ण आवश्यकता थी कि वाणिज्यिक बैंकों की प्रारक्षित निधि संबंधी अपेक्षाओं में बदलाव किए जाने का लचीलापन लाया जाए। 1962 में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम (धारा 42 जो अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की आरक्षित अपेक्षाओं को निर्धारित करती है) तथा बैंककारी विनियमन अधिनियम (धारा 18 जो गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के लिए नकदी आरक्षित अपेक्षाओं का निर्धारण करती है) में किए गए संशोधनों ने इस संबंध में लचीलापन प्रदान किया। मूलतः भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अंतर्गत अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों से यह अपेक्षित था कि वे किसी भी दिन कारोबार की समाप्ति पर भारत में अपनी मांग देयताओं के कम से कम 5 प्रतिशत तक तथा अपनी मीयादी देयताओं के 2 प्रतिशत तक की नकदी प्रारक्षित राशि रिजर्व बैंक के पास बनाए रखें। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में 1956 में किए गए संशोधन ने बैंक को यह शक्ति दी कि वह बैंकों की प्रारक्षित निधि संबंधी अपेक्षाओं को घटा-बढ़ा कर बैंकों की भारत में मांग देयताओं के 5 प्रतिशत और 20 प्रतिशत के बीच और भारत में उनकी मीयादी देयताओं के 2 प्रतिशत और 8 प्रतिशत के बीच कर सकता है। 1962 के संशोधन ने आरक्षित निधि संबंधी अपेक्षाओं को एक समान रूप से बैंकों की मांग और मीयादी देयताओं के 3 प्रतिशत पर निश्चित कर दिया (अर्थात् इसमें इस प्रयोजन के लिए मांग और मीयादी देयताओं के अंतर को समाप्त कर दिया) गया, तथा नकदी आरक्षित अपेक्षाएं 3 प्रतिशत से 15 प्रतिशत के बीच कम ज्यादा की जा सकती हैं। इन वैधानिक उपायों ने वाणिज्यिक बैंकों के ऋण विस्तार को नियंत्रित करने के लिए रिजर्व बैंक के विवेक पर और अधिक साधन उपलब्ध कराए।

4.43 एक अन्य उपाय था चुनिंदा ऋण नियंत्रण को सक्रिय करना। बैंकों के अग्रिमों की बहुविधिता के संदर्भ में मई 1956 में पहली बार चुनिंदा ऋण नियंत्रण को रिजर्व बैंक ने लागू किया। योजना के वित्त पोषण के लिए विदेशी मुद्रा भंडार में लगातार होनेवाली हानि ने पुनः रिजर्व बैंक को मजबूर किया कि वह और अधिक ऋण नियंत्रण संबंधी उपायों को लागू करें - जैसे अक्टूबर 1960 में लागू की गई - 'कोटा-स्लैव' प्रणाली। यह एक प्रकार से मूल्य लिखत के माध्यम से ऋण की राशनिंग करना था। इस लिखत का लाभ यह था कि यह उसी समय सरकार की उधार राशियों की लागत में प्रत्यक्ष वृद्धि नहीं करेगी, या तत्काल श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार को प्रभावित नहीं करेगी। इस प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक अनुसूचित बैंक को एक तिमाही कोटा दिया गया था जो उसकी उन औसत आरक्षित निधियों की आधी मात्रा के बराबर होता था, जो उसे पहले वर्ष के प्रत्येक सप्ताह के दौरान भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42(1) के अंतर्गत बनाए रखना होता था। इस 'कोटा-

स्लेव' प्रणाली को ऋण के विस्तार पर प्रभावी रूप से मात्रात्मक नियंत्रण के लिए यथा आवश्यक रूप में उदार या कठोर बनाया जा सकता था।

4.44 कोटा-स्लेव प्रणाली, जो ऋण की उपलब्धता प्रमुख नियंत्रणकारी उपादान था, के स्थान पर 1964 में बैंकों की निवल तरलता अनुपात (एनएलआर) के आधार पर आर्थिक निभाव की योजना शुरू की गई जिसे कोटा-स्लेव प्रणाली की तुलना में वाणिज्यिक बैंक के ऋण-विस्तार पर केंद्रीय बैंक के नियंत्रण के स्वरूप को कम विभेदकारी माना गया। सांविधिक चलनिधि अनुपात के परिवर्तन को अपना कर इस एनएलआर फार्मूला की परिकल्पना अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को रिजर्व बैंक के ऋणों की लागत को नियंत्रित करने के लिए की गयी थी। निवल चलनिधि रिजर्व बैंक के पास रखी बैंक की नकदी शेषराशियों, अधिसूचित बैंकों में चालू खाता जमाराशियों तथा सरकारी और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेश के अनुपातों, जिनमें से रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक तथा आइडीबीआई से ली गई कुल उधार राशियों का इसकी कुल मांग और मीयादी देयताओं के प्रति अनुपात को दर्शाती थी, एनएलआर सामान्यतः वर्तमान समग्र चलनिधि अनुपात (एसएलआर + सीआरआर) के बराबर होती थी।

4.45 ऋण नीतियों को पंचवर्षीय योजना के और अनुरूप बनाने के लिए नवंबर 1966 में ऋण नियंत्रण के एक साधन के रूप में ऋण प्राधिकरण योजना (सीएएस) की शुरुआत की गई। इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे किसी एक उधारकर्ता को 1 करोड़ रुपए या उससे अधिक का कोई नई ऋण स्वीकृत करने से पहले या कोई नया ऐसी ऋण सीमा स्वीकृत करने से पहले, जिससे संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली से उस उधारकर्ता द्वारा ली गई कुल उधार राशि की सीमाएं 1 करोड़ रु. तक पहुँच जाएं, रिजर्व बैंक का प्राधिकरण प्राप्त करें। इस योजना ने भी कुछ बड़े उधारकर्ताओं द्वारा बैंकों के दुर्लभ संसाधनों को पहले से ही खाली करने की समस्या को रोकने में तथा उन पर वित्तीय अनुशासन के उपाय लागू करने में सहायता की।

विदेशी मुद्रा प्रबंधन तथा नियंत्रण

4.46 दूसरे विश्व युद्ध की अवधि के दौरान भारत के स्टर्लिंग ऋण के प्रत्यावर्तन में रिजर्व बैंक की भूमिका के बारे में पूर्ववर्ती भाग में उल्लेख किया गया था। जहाँ वह "प्रचुरता" की समस्या से संबंधित था, परंतु बाद के वर्षों में भारतीय अर्थ व्यवस्था के बाह्य क्षेत्र से संबंधित समस्या जिसने सरकार और रिजर्व बैंक का ध्यान आकर्षित किया, वह थी - विदेशी मुद्रा की "कमी" जिसने 1970 के बाद के दशक में गंभीर रूप धारण कर लिया।

4.47 दूसरे विश्वयुद्ध से पहले भारत एक निवल ऋणी देश था जिसके पास व्यापार खाते में भारी अधिशेष राशि थी। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भारत सुरक्षा नियमावली के अंतर्गत आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग

करते हुए भारत में विदेशी मुद्रा नियंत्रण लागू किया। विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (फेरा), 1947 जिसे ब्रिटिश शासन के अंतर्गत एक अस्थायी उपाय के रूप में लागू किया गया था, बाद में 1957 में उसे एक स्थायी अधिनियम बना दिया गया और यह जनवरी 1974 तक लागू रहा। इस अधिनियम का सीमित उद्देश्य था - भारी अनिवासी हितों और विदेशियों के नियोजन को देखते हुए विदेशी मुद्रा के आगम को विनियमित करना। स्वतंत्र भारत में विद्यमान भावना आजादी को सुरक्षित रखना तथा उसे और सुदृढ़ करना तथा एकबार फिर किसी भी प्रकार की विदेशी सत्ता को चाहे वह राजनैतिक हो या आर्थिक भारत में आने नहीं देना। नियंत्रण का यह ढांचा अनिवार्यतः लेनदेन पर आधारित था - विदेशी मुद्रा के सभी लेनदेनों पर जिनमें निवासी और अनिवासियों के लेनदेन भी शामिल हैं, पाबंदी थी, जब तक कि उनके लिए विशेष रूप से अनुमति नहीं दी गई हो। दूसरी पंचवर्षीय योजना ने जिसमें औद्योगिकीकरण पर निवेश में भारी बल दिया गया था, विदेशी मुद्रा के संसाधनों पर भारी दबाव ला दिया। निर्यातों में वृद्धि नहीं हो रही थी, जबकि आयात तेजी से बढ़ रहे थे : जो भुगतान संतुलन की समस्या को और जटिल बना रहे थे।

4.48 1950-51 से दिसंबर 1973 की अवधि के दौरान भारत ने विनियम दर व्यवस्था का अनुसरण किया जिसमें 1966 और 1971 में अवमूल्यन को छोड़कर रूपए को पौंड-स्टर्लिंग से संबद्ध कर दिया गया था। इस परिस्थिति में अनेक अनिश्चितताएं थीं जिनका भुगतान संतुलन पर प्रभाव पड़ा। भारी मात्रा में खाद्यान्न और अनिवार्य वस्तुएं आयातित करनी पड़ीं। इससे पूंजी के बहिर्गम की चिंताएं होने लगीं। सूखा, युद्ध और तेल संबंधी आयातों के कारण भुगतान संतुलन पर बार-बार पड़ने वाले दबावों से यह स्थिति और भी बढ़ती चली गई। इस संदर्भ में तथा विकासात्मक आयोजना को अपनाने से घरेलू बचतों को घरेलू निवेश के लिए उपयोग करने पर जोर दिया गया।

4.49 इस पृष्ठभूमि में बीजकांकन में हेराफेरी के माध्यम से विदेशी मुद्रा के क्षरण (बाहर जाने) की चिंता से संबंधित लोक लेखा समिति की सिफारिशें (जून 1971) तथा “सामाजिक और आर्थिक अपराधों की जांच और दंड” पर विधि आयोग की रिपोर्ट (अप्रैल 1972) ने भारत सरकार को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह विदेशी पूंजी के आगमन को विनियमित करने के बजाए विदेशी मुद्रा के संरक्षण के लिए फेरा, 1947 पर पुनः अपना ध्यान केंद्रित करे। सरकारी नीति को प्रभावी रूप से लागू करने तथा पहले अधिनियम की कार्यपद्धति में विद्यमान कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक परिवर्तन जोड़ने के उद्देश्य से फेरा 1973 का मसौदा तैयार किया गया। संकट से प्रेरित विधान के रूप में, फेरा 1973 में स्वभावतः अनेक कठोर प्रावधान थे। फेरा के अंतर्गत किया गया कोई भी अपराध फौजदारी अपराध माना गया था जिसमें कारावास की सजा हो सकती थी। चालू खाता लेनदेनों पर कठोर प्रतिबंध 1990 के बाद

के दशक के मध्य तक जारी रहे, जब चालू खाते में परिवर्तनीयता को संभव बनाने के लिए 1973 के विधान में कुछ रियायतें दी गईं।

4.50 यह नियंत्रक ढांचा पूंजी खाते के लिए भी इतना ही वैध था, हालांकि 1999 के बाद के दशक तक पूंजी खाता नगण्य था। पूंजी खाते पर अधिकांश प्राप्तियां सरकारी खाते में थीं, और वे पूर्ववर्ती रूस के साथ द्विपक्षीय व्यवस्थाओं के अतिरिक्त बाध्य सहायता के रूप में प्राप्त विदेशी प्राप्तियां थीं। 1980 के बाद के दशक में, बाह्य वाणिज्यिक उधारों (ईसीबी) तथा अनिवासी भारतीयों से प्राप्त जमाराशियों के रूप में काफी निजी पूंजी प्रवाह का आगम हुआ। पूंजी खाते को क्रमिक रूप से उदार बनाते जाने से 1990 के बाद के दशक में इस स्थिति में परिवर्तन आया।

4.51 फेरा ने केंद्र सरकार को ये शक्तियां प्रदान की थीं कि वह रिजर्व बैंक को ऐसे सामान्य या विशेष निदेश दे सकती है जिन्हें वह उचित समझे तथा रिजर्व बैंक उक्त अधिनियम के अंतर्गत अपने कार्य करते हुए इन निदेशों का पालन करने के लिए बाध्य था। काफी सीमा तक विदेशी मुद्रा का नियंत्रण भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय में मुख्य नियंत्रक - आयात-निर्यात द्वारा संचालन से संबंधित और उसका पूरक होता था। विदेशी मुद्रा नियंत्रण का व्यापार नियंत्रणों की तुलना में व्यापक क्षेत्र है क्योंकि इसमें सभी निर्यातों और आयातों के संबंध में किए गए सभी वित्तीय लेनदेनों तथा अदृश्य और पूंजीगत लेनदेनों के लिए गए निपटान पर पर्यवेक्षण करना शामिल है, जबकि व्यापार नियंत्रण का संबंध माल के भौतिक अंतरण से (अधिकांशतः आयातों तक सीमित) था। विदेशी मुद्रा नियंत्रण से संबंधित रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्यों में कुछ अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (प्राधिकृत व्यापारियों) को विदेशी मुद्रा में लेनदेन करने का लाइसेंस देने तथा प्राधिकृत व्यापारियों और अन्य संस्थाओं (एयर लाइनें, शिपिंग कंपनियों, यात्रा एजेंटों तथा बीमा कंपनियों) को उन मामलों में जिनमें उनके परिचालनों का विदेशी मुद्रा विनियम पर प्रभाव पड़ता हो, को निदेश जारी करना था।

1980 के बाद के दशक में मौद्रिक ढांचा तथा नीति संबंधी पहल

4.52 1970 के बाद के दशक में सारे विश्व में उच्च मुद्रास्फीति तथा ब्रिटेन वुड्स प्रणाली के टूट जाने से मौद्रिक नीति में भारी बदलाव आया और वह कीन्स के सिद्धांतों से हटकर मुद्रावादी दृष्टिकोण की ओर बढ़ गई। मुद्रास्फीति के कारणों और स्रोतों के कारकों को खोजते हुए विकसित देशों ने या तो मुद्रास्फीति को या मौद्रिक (या प्रारक्षित निधियों) नियंत्रण को साधने का लक्ष्य बनाया। इसने भारतीय संदर्भ में भी नीति निर्याताओं की सोच को प्रभावित किया। सरकार के भारी घाटे तथा रिजर्व बैंक द्वारा इसके वित्त पोषण से उत्पादन की तुलना में मुद्रा आपूर्ति में भारी वृद्धि हुई जिससे समग्र मुद्रा आपूर्ति के आकार तथा वृद्धि के आकलन में व्यापक दृष्टिकोण को बनाने के लिए नई सोच को प्रेरित किया। मौद्रिक प्रणाली की

कार्यपद्धति पर समीक्षा करने के लिए गठित समिति (अध्यक्ष : सुखमय चक्रवर्ती) ने यह सुझाव दिया कि मौद्रिक प्राधिकारी को एक अधिक औपचारिक तथा सुरक्षित तरीके से मौद्रिक लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए। मौद्रिक लक्ष्य के स्तर का निर्धारण उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि तथा मुद्रास्फीति के सहनीय स्तर के आधार पर किए जाने की जरूरत है। अबतक मौद्रिक बजट बनाने के लिए किए गए अभ्यासों ने मौद्रिक प्राधिकारी को औपचारिक मौद्रिक लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में उपयोगी अंतर्दृष्टियां प्रदान की हैं।

4.53 चक्रवर्ती समिति ने मुद्रा आपूर्ति के व्यापक उपायों को प्रतिसूचना के आधार पर लक्षित करने का सुझाव दिया था। उक्त समिति ने एक व्यवस्थित परिचालनात्मक प्रक्रिया की रूपरेखा प्रस्तुत की, विशेषकर मौद्रिक और ऋण बजट की आयोजना करने में, मौद्रिक बजट में वास्तविक वृद्धि तथा मुद्रास्फीति के बुनियादी मापदंडों का उपयोग करते हुए अनुमान लगाया गया तथा मुद्रा आपूर्ति के संसाधनों अर्थात् : निवल धरेलू ऋण (सरकार तथा वाणिज्यिक क्षेत्र को रिजर्व बैंक का निवल ऋण), रिजर्व बैंक की निवल विदेशी आस्तियां तथा निवल गैर मौद्रिक देयताएं, में अनुमानित घटबढ़ के साथ सुसंगति की जांच करते हुए उसका अनुसरण किया गया। जहाँ निवल विदेशी आस्तियों तथा निवल गैर मौद्रिक देयताओं में घटबढ़ का निर्धारण पिछली प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है, वहीं सरकार तथा वाणिज्यिक क्षेत्र को रिजर्व बैंक के ऋण का पूर्व अनुमान अनुमानित मौद्रिक बजट के समग्र आकार के अनुरूप प्रस्तुत किया गया। उक्त समिति ने यह भी सुझाव दिया कि ऋण के मौसमी मांग के लिए भी स्वतंत्र रूप से अनुमान लगाया जाए और यह सिफारिश की कि यदि उसमें कमी पड़ती है तो रिजर्व बैंक को पुनर्वित्त के रूप में उसको सहायता करनी चाहिए। अंततः इस प्रकार अनुमानित बैंक ऋण के अपेक्षित स्तर का उपयोग योजना की प्राथमिकताओं के संदर्भ में उपयुक्त क्षेत्रीय आबंटन विकसित करने के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार मौद्रिक नीति का निर्माण पुनःसंरचित मौद्रिक नीति कार्यक्रम का एक औपचारिक प्रक्रिया-तंत्र बन गया। 1980 के बाद के दशक के मध्य तक रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति के लिए एक औपचारिक ढांचे को विकसित कर लिया था जिसमें एम3 को एक सामान्य लंगर (आश्रय) के रूप में लक्ष्य-बद्ध करना था जो कि मोटे तौर पर चक्रवर्ती समिति के सिफारिशों पर आधारित था।

4.54 मुद्रा बाजार पर कार्यदल (अध्यक्ष : एन. वागुल), जिसने मुद्रा बाजार के विकास के संबंध में चक्रवर्ती समिति की सिफारिशों की जांच की थी, ने अपनी रिपोर्ट जनवरी 1987 में प्रस्तुत कर दी थी। इस रिपोर्ट की अनुसरण में, मुद्रा बाजार के अनेक लिखतें शुरू की गईं: 182 दिवसीय खजाना बिल, अंतर बैंक सहभागिता प्रमाण पत्र, जमा प्रमाण पत्र (सीडी) तथा वाणिज्यिक पत्र (सी.पी.)। मुद्रा बाजार की विभिन्न लिखतों में द्वितीयक बाजार के संवर्धन के लिए 1988 में भारतीय मितिकाटा और वित्तगृह लि. का गठन किया गया।

4.55 भौगोलिक व्याप्ति की दृष्टि ने बैंकिंग नेटवर्क में विस्तार की प्रक्रिया को तथा कठोर नियंत्रणों ने बैंकों की आस्तियों की गुणवत्ता को

प्रभावित किया और उनकी लाभप्रदता को विकृत कर दिया। इन गतिविधियों के परिणामस्वरूप वित्तीय क्षेत्र को कुछ सीमा तक अविनियमित करने तथा उसके समेकन और विशाखीकरण के लिए 1980 के बाद के दशक के मध्य में अनेक उपाय किए गए। समेकन के उपाय करने का उद्देश्य था - बैंक की संरचनाओं को सुदृढ़ करना, हाउसकीपिंग का प्रशिक्षण देना, ग्राहक सेवा, आन्तरिक प्रक्रियाएं और प्रणालियां, ऋण प्रबंधन, ऋण की वसूली, स्टाफ की उत्पादकता तथा लाभप्रदता। बैंकों के लिए एक स्वास्थ्य कूट की प्रणाली 1985 में शुरू की गई। बैंकों को अधिक परिचालनगत नमनीयता प्रदान करने के लिए भी कुछ पहलें की गईं। इनमें शामिल हैं - बैंकों को उपकरण पट्टादायी तथा पारस्परिक निधियों के कारोबार में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान करना, अनिवार्य प्राधिकरण योजना के अंतर्गत पूर्व प्राधिकरण की अपेक्षा को समाप्त करना, सरकारी प्रतिभूतियों पर कूपन दरों को बढ़ाकर बैंक की जमा और उधार की दरों को औचित्यपूर्ण बनाना, तथा मांग/नोटिस मुद्रा पर भारतीय बैंक संघ द्वारा निर्धारित 10 प्रतिशत की उच्चतम सीमा को हटाना (जाधव, 2003)।

III सुधार का चरण (1991-2005)

4.56 भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और वैश्वीकरण की जो प्रक्रिया 1991 से प्रारंभ हुई थी, उसने रिजर्व बैंक के उत्तरदायित्वों में कई नए आयामों को जोड़ दिया। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ-साथ मौद्रिक नीति के ढांचों को भी बेहतर बनाया गया तथा परंपरागत केंद्रीय बैंकिंग के कार्यों को जिनमें मुद्रा प्रबंधन तथा भुगतान और निपटान प्रणालियां भी शामिल हैं, वैश्विक प्रवृत्तियों तथा धरेलू अपेक्षाओं के अनुरूप ढाला गया।

वित्तीय क्षेत्र के सुधार

4.57 1980 के बाद के दशक के दौरान वित्तीय बाजार अत्यधिक विभाजित तथा नियंत्रित थे और सरकारी प्रतिभूति बाजार एवं ऋण बाजार में ब्याज दरें कठोरतापूर्वक नियंत्रित की जाती थीं। बैंकिंग क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का प्रभुत्व था जिनकी गैर निष्पादक आस्तियों (एनपीए) की मात्रा काफी ज्यादा थी। न्यूनतम एसएलआर बनाए रखने के आदेशानुसार जमाराशियां सरकार को दे दी जाती थीं, जिनमें वाणिज्यिक बैंकों ने अपनी देयताओं के काफी बड़े भाग को बाजार की ब्याज दर से नीची दरों पर सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश कर रखा था। वित्तीय बाजारों के विकास की स्थिति एक दूसरी बड़ी बाधा बन चुकी थी। नीतिगत संकेतों के प्रभावी अंतर के लिए वित्तीय बाजारों की स्वस्थ वृद्धि के लिए संस्थागत, प्रौद्योगिकीगत तथा कानूनी अड़चनों को दूर करने का कार्य 1991 के मध्य से वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के लिए प्रमुख कार्य सूची बन गई।

4.58 भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए वैश्वीकरण ने इसके पूरे लाभ उठाने के लिए धरेलू बाजारों को अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों को साथ

समन्वय को आवश्यक बना दिया। वित्तीय मध्यस्थन की प्रक्रिया में दक्षता को सुधारने, मौद्रिक नीति के संचालन में प्रभावशीलता को बढ़ाने तथा घरेलू वित्तीय क्षेत्र का वैश्विक प्रणाली के साथ समन्वय करने के लिए परिस्थितियां निर्मित करने की दृष्टि से 1992 में भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की शुरुआत की गई। सुधारों के पहले चरण जिसे वित्तीय प्रणाली संबंधी समिति (नरसिंहम समिति I) की सिफारिशों से मार्गदर्शन मिला, का उद्देश्य था - दक्षता, उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने की दृष्टि से वित्तीय क्षेत्र की परिचालनगत नमनीयता और कार्यमूलक स्वायत्तता को बढ़ाना। दूसरे चरण ने, जो बैंकिंग क्षेत्र के सुधार संबंधी समिति (नरसिंहम समिति II) की सिफारिशों पर आधारित था, बैंकिंग प्रणाली की नीवों को सुदृढ़ करने तथा उसमें संरचनागत सुधार लाने पर अपना ध्यान केंद्रित रखा (मोहन, 2003)।

बैंकिंग क्षेत्र में सुधार

4.59 वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के पहले चरण ने बैंकिंग उद्योग का अपविनियमन करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया जिसमें नए निजी क्षेत्र के बैंकों को प्रवेश की अनुमति देना भी शामिल था। इसके साथ ही साथ, बैंकिंग, गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों, वित्तीय संस्थाओं तथा पूंजी बाजारों के संस्थागत ढांचे को विवेक-सम्मत मानदंडों, पूंजी पर्याप्तता संबंधी अपेक्षाओं तथा भुगतान और निपटान प्रणालियों में सुधार लाकर सुदृढ़ करने के उपाय किए गए तथा पर्यवेक्षी ढांचे को मजबूत बनाया गया। संस्थागत उपायों में बैंक के पर्यवेक्षी प्रक्रिया तंत्रों को सुदृढ़ करने के लिए बैंकों को पुनः पूंजीकरण करने तथा ऋण वसूली में सुधारों के लिए वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन भी शामिल था।

4.60 सुधारों के दूसरे चरण ने अपना ध्यान बैंकिंग क्षेत्र पर केंद्रित रखा जिसमें विवेकसम्मत मानदंडों पर जोर दिया गया। अंतरराष्ट्रीय मानकों को पूरा करने के लिए विवेक-सम्मत मानदंडों को क्रमिक रूप से लागू किया गया। पूंजी - पर्याप्तता अनुपात को बढ़ाने के लिए कार्रवाई प्रारंभ की गई। बाजार जोखिमों से निपटने के लिए सरकार द्वारा अनुमोदित प्रतिभूतियों पर जोखिम भारांक दिए गए, विदेशी मुद्रा और स्वर्ण की खुली स्थिति पर जोखिम भारांक दिए गए। नरसिंहम समिति II की सिफारिशों को लागू किए जाने के पश्चात पूंजी-पर्याप्तता का अपेक्षित अनुपात बनाए रखने के लिए बैंकिंग प्रणाली में भारी पूंजी निवेश की जरूरत समझी गई। इसी प्रकार, आय की पहचान के लिए अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत मानदंडों को लागू किया गया, जिसमें यह अपवाद रखा गया कि आस्तियों पर आय को तब तक नहीं माना जाएगा जब तक कि वह देय अवधि के बाद दो तिमाहियों के भीतर प्राप्त नहीं हो जाती है (अर्थात् देय तारीख + 30 दिन और)। एक महत्वपूर्ण निर्णय उन आस्तियों को, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा गारंटी प्राप्त है, कुछ परिस्थितियों में गैर निष्पादक आस्ति मानने से संबंधित भी है।

वित्तीय क्षेत्र के अन्य घटकों में सुधार

4.61 प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने वाले तथा विवेक सम्मत विनियमन और पर्यवेक्षण स्थापित करने के उद्देश्य वाले उपाय गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं पर भी लागू किए गए। गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एबीएफसी), विशेषकर उन कंपनियों को, जो जन्म से जमाराशियां स्वीकार करने की गतिविधियों में लगी हुई हैं, विकास वित्त संस्थाओं (डीएफआई), विशिष्ट मीयादी ऋणदात्री संस्थाओं, शहरी सहकारी बैंकों सभी को रिजर्व बैंक के अधिकार क्षेत्र में ले आया गया है। एक ही प्रकार की गतिविधियों में लगी संस्थाओं के विनियामक एकाकीमुखता, विवेक-सम्मत विनियमन तथा पर्यवेक्षण मानदंडों को डीएफआई, एनबीएफसी तथा सहकारी बैंकों पर लागू किया गया है।

4.62 1990 के दशक के बाद के वर्षों तक बीमा कारोबार सरकारी स्वामित्व तक सीमित रहा। 1999 में बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण (आइआरडीएडी) अधिनियम के पारित हो जाने पर अनेक उपाय किए गए जिनमें नए खिलाड़ियों (सहभागियों) संयुक्त (उद्यमों बैंचरों) को जोखिम भागीदारी/कमीशन आधार पर बीमा कारोबार शुरू करने की अनुमति देना भी शामिल है।

4.63 बाजार की दक्षता में सुधार लाने, पारदर्शिता बढ़ाने, राष्ट्रीय बाजारों का एकीकरण करने तथा अनुचित कारोबारी संव्यवहारों को रोकने के लिए पूंजी बाजार को उदार बनाने, उसे विनियमित करने तथा उसका विकास करने हेतु सुधार के उपायों को लागू किया गया। इनमें से एक महत्वपूर्ण कदम था - इक्विटी बाजारों के विनियामक के रूप में कार्य करने के लिए फरवरी 1992 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (सेबी) का गठन 1992 से इक्विटी बाजार में सुधारों के उपायों का उद्देश्य मुख्य रूप से विनियमन की प्रभावशीलता, प्रतिस्पर्धी परिस्थितियों को बढ़ाने, अनौपचारिक असमानताओं को कम करने, आधुनिक प्रौद्योगिकीय बुनियादी संरचना का विकास करने, अंतरण लागत को कम से कम करने तथा प्रतिभूति बाजार में सट्टेबाजी को नियंत्रित करने पर ध्यान केंद्रित करना था। सुधारों की प्रक्रिया में दूसरा महत्वपूर्ण विकास 1992 में निजी क्षेत्र में पारस्परिक निधियों का खोलना रहा है जिसने भारतीय यूनिट ट्रस्ट के एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

4.64 भारतीय पूंजी बाजार को विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआइआइ) के लिए 1992 में खोल दिया गया। भारतीय कंपनी जगत को अमरीकी डिपोजिटरी रसीद (एडीआर), ग्लोबल डिपोजिटरी रसीद (जीडीआर) विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बांड (एफसीसीबी) तथा बाह्य वाणिज्यिक उधार (ईसीबी) के माध्यमों से अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजारों से पूंजी जुटाने की अनुमति दी गई। इसी प्रकार विदेशी कंपनी निकाय (ओसीबी) तथा अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) को यह अनुमति दी गई है कि वे

भारतीय कंपनियों में निवेश कर सकते हैं। एफआईआई को सरकारी प्रतिभूति सहित सभी प्रकार की प्रतिभूतियों में निवेश करने की अनुमति दी गई है और उन्हें पूर्ण पूंजी की परिवर्तनीयता प्राप्त है। पारस्परिक निधियों को अनुमति दी गई है कि वे विदेशों में इक्विटियों में निवेश करने के लिए अपतटीय शाखाएं खोल सकते हैं।

अनुपूरक नीतिगत परिवर्तन

4.65 सभी क्षेत्रों में तथा प्रत्येक क्षेत्र के भीतर (जिनमें प्रमुख हैं, मौद्रिक, राजकोषीय, तथा बाह्य) सुधारों के उपायों को योजनाबद्ध और क्रमिक रूप से इस तरह लागू किया गया ताकि वे एक दूसरे को ताकत दे सकें। इस प्रकार के अनुपूरक सुधार के उपायों के प्रमुख पहलुओं को निम्नलिखित अनुच्छेदों में दर्शाया गया है।

ऋणबाजार के सुधार

4.66 सरकारी प्रतिभूति बाजार के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण सुधार के उपाय किए गए हैं। रिजर्व बैंक ने सितंबर 1994 में भारत सरकार के साथ एक ऐतिहासिक करार किया जिसके अंतर्गत तदर्थ खजाना बिलों को क्रमिक चरणों में समाप्त कर दिया जाएगा। तदनुसार तदर्थ खजाना बिल 1 अप्रैल 1997 से बंद कर दिए गए।

4.67 लोक ऋण का प्रबंधन तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार के परिचालन लोक ऋण अधिनियम, 1944 द्वारा संचालित होते हैं। निर्धारित प्रक्रियाएं अत्यधिक पुरानी हैं तथा कुछ प्रावधान वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक हो गये हैं। लोक ऋण अधिनियम को निरस्त कर उसके स्थान पर सरकारी प्रतिभूति अधिनियम नाम से एक नया विधान केंद्रीय मंत्रिपरिषद द्वारा अनुमोदित कर दिया है और अब इसे संसद की मंजूरी की प्रतीक्षा है। तथापि, लोक ऋण अधिनियम 1944 चूंकि केंद्र और राज्य सरकार दोनों की ओर से रिजर्व बैंक द्वारा जुटाए गए बिक्री योग्य ऋणों के लिए लागू है, अतः इस प्रस्ताव पर सभी राज्य सरकारों की सहमति भी अपेक्षित है। नए विधान के अधिनियम बन जाने पर रिजर्व बैंक के पास खासी शक्तियां होंगी कि वह इलैक्ट्रॉनिक परिवेश के लिए उपयुक्त किसी अंतरण लिखत को शुरू कर सके। ऋण प्रबंधक के रूप में रिजर्व बैंक का यह दायित्व है कि वह सरकार के लिए उधार लेने की लागत को न्यूनतम रखे। सामान्यतः, ऊर्ध्वमुखी झुकाव वाले आय वक्र के साथ प्रतिभूति की परिपक्वता अवधि जितनी ही लंबी होगी, उतनी ही लागत उच्चतर होगी। इस प्रकार उधार की अवधि (मीयाद) तथा उसकी लागत के बीच परस्पर संबंध है (मोहन 2004 क)।

4.68 सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर को बाजार से संबद्ध बनाया गया है और परिपक्वता अवधि में किए गए परिवर्तन बाजार की वरीयताओं को दर्शाते हैं। अप्रैल 1992 से, केंद्र सरकार का उधार कार्यक्रम मौटे तौर

पर नीलामियों द्वारा चलाया गया है ताकि बाजार आधारित मूल्य की खोज की जा सके। सरकारी उधार पर बाजार से संबद्ध ब्याज दरों के होने के परिणाम स्वरूप, इधर खुले बाजार के परिचालन जो अप्रभावी हो गए थे, अब उन्हें पर्याप्त गति प्राप्त हुई है। नीति के प्रत्यक्ष लिखतों से अप्रत्यक्ष लिखतों की ओर बल दिए जाने के लिए क्रमिक बदलाव आया है- बैंकों के पास उपलब्ध प्रारक्षित निधियों के स्तरों को प्रभावित करने के लिए खुले बाजार के परिचालनों और रेपो का सक्रिय रूप से प्रयोग होने लगा है। इस लिखत की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए मुद्रा, विदेशी मुद्रा और श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजारों को व्यापक तथा गहन करने के लिए तथा बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए महत्तर प्रयास किए जा रहे हैं।

4.69 चलनिधि का प्रबंधन चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के माध्यम से चलनिधि को प्रणाली में बढ़ाकर या वापस खींचकर किया जाता है। प्रारंभ में 1999 में शुरू की गई अंतरिम समायोजन सुविधा के अंतर्गत चलनिधि को बढ़ाने का कार्य वाणिज्यिक बैंकों को निर्यात पुनर्वित्त तथा संपार्श्विक (प्रतिभूति समर्थित) ऋण सुविधा (सीएलएफ) और अतिरिक्त प्रतिभूति समर्थित ऋण सुविधा (एलसीएलएफ) तथा दो स्तरों पर चलनिधि समर्थन अर्थात् स्तर 1 तथा स्तर 2 प्राथमिक व्यापारियों (पीडी) को समर्थक खजाना बिलों और सरकारी प्रतिभूतियों के प्रति उधार देने के रूप में किया जाता था। सीएलएफ और स्तर 1 के ऋण बैंक दर पर दिए जाते थे तथा एसीएलएफ तथा स्तर 2 के ऋण बैंक दर + 2 प्रतिशत ऊपर की दर पर। नरसिंहम समिति II की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए स्तर I तथा पूर्ण चलनिधि समायोजन सुविधा के स्तर II के चरण I को क्रमशः 5 जून 2000 तथा 5 मई 2001 से लागू किया गया।

4.70 प्रतिभूति समर्थित उधार लेने और उधार देने के दायित्व (सीबीएलओ) 20 जनवरी 2003 को भारतीय समाशोधन निगम लि. (सीसीआईएल) के माध्यम से मुद्रा बाजार के लिखत के रूप में परिचालित किए गए। इस लिखत के लिए बाजार का विकास करने के लिए रिजर्व बैंक ने 2004-05 के दौरान बाजार सहभागियों तथा सीसीआईएल के बीच प्रतिभूतियों के स्वचालित निशुल्क अंतरण की शुरुआत की। मांग/नोटिस मुद्रा बाजार के पूर्णतः अंतर-बैंक बाजार के रूप में परिवर्तन के बाद व्यापार-निधियों को बैंक तथा गैर बैंक सहभागियों के लिए एक मार्ग प्रदान करने की दृष्टि से रिजर्व बैंक द्वारा एलएएफ सुविधा से अलग एक रेपो बाजार परिश्रम पूर्वक विकसित किया गया। बाजार को व्यापक बनाने की दृष्टि से गैर अनुसूचित सहकारी बैंक (यूसीबी) तथा अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के पास खुले गिल्ट खाते वाली सूचीबद्ध कंपनियों को, पात्रता मानदंड और सुरक्षोपायों के अंतर्गत रिजर्व बैंक से बाहर रेपो बाजार में भाग लेने के लिए अनुमति दी गई। 29 अप्रैल 2005 से जमापत्रों (सीडी) की मीयाद को 15 दिनों से घटाकर 7 दिन कर दिया गया ताकि

उन्हें वाणिज्यिक पत्रों (सीबी) और बैंकों के पास मीयादी जामाराशियों के समान बनाया जा सके। 1990 के बाद के दशक से वित्तीय उदारीकरण की प्रक्रिया के शुरू किए जाने से वित्तीय बाजार क्रमिक (प्रगामी) रूप से समन्वित हो गए हैं जैसा कि ब्याज दरों में अधिकाधिक समनुरूपता से देखा जा सकता है। बाजार के समन्वयन का यह भी तात्पर्य है कि मौद्रिक संचरण की ब्याज दर सरणी ने हाल के वर्षों में कुछ शक्ति प्राप्त कर ली है।

बाह्य क्षेत्र के सुधार

4.71 बाह्य क्षेत्र के सुधारों का व्यापक दृष्टिकोण भुगतान संतुलन पर उच्च स्तरीय समिति (अध्यक्ष : सी. रंगराजन) की रिपोर्ट में बना दिया गया था। उक्त समिति ने अन्य बातों के अलावा ये सिफारिशें की थीं, कुछ सीमाओं के साथ बाजार-निर्धारित विनिमय-दर व्यवस्था की शुरुआत, चालू खाते की परिवर्तनीयता की ओर बढ़ते हुए, चालू खाते के लेन देनों को उदार बनाना, ऋण सर्जक आगमों की बजाए गैर ऋण सर्जक पूंजी आगमों पर जोर देते हुए विन्यासगत बदलाव, बाह्य वाणिज्यिक उधार राशियों पर कठोर विनियमन, विशेषकर अल्पावधिक ऋणों पर, अनिवासी भारतीयों से आने वाली विदेशी मुद्रा आगमों के उद्वेगशील तत्वों को निरुत्साहित करना, आगमों से संबद्ध बहिर्गमों, अर्थात् मूलधन, ब्याज, लाभांश, लाभ और बिक्रीगत आय के बहिर्गमों को पूरी छूट तथा अन्य बहिर्गमों का क्रमिक उदारीकरण, तथा बाह्य सहायता के आगम के अंतरमध्यस्थन से सरकार का दूर रहना।

4.72 बाद के वर्ष में हुई गतिविधियों में आम तौर पर इन सिफारिशों का अनुपालन किया गया। उदारीकृत विनिमय दर प्रणाली (लम्स) जिसमें दोहरी विनिमय दर प्रणाली निहित थी, व्यापार, उद्योग तथा विदेशी निवेश के अन्य क्षेत्रों में उदारीकरण के उपायों के साथ-साथ मार्च 1992 में शुरू की गई। दोहरी विनिमय दर प्रणाली अनिवार्यतः एक संक्रमणकालीन चरण था, जो बाद में 1 मार्च 1993 से एकल विनिमय दर में बदल गई। इसने रूपए की बाजार से निर्धारित विनिमय दर व्यवस्था का युग शुरू कर दिया। इसे चालू खाते की परिवर्तनीयता की दिशा में बढ़ने का एक महत्वपूर्ण कदम माना गया जिसे बाद में अगस्त 1994 में अंततः प्राप्त कर लिया गया जब भारत ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के करार की अनुच्छेद VIII को स्वीकार कर लिया।

4.73 भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के विकास के लिए अनुवर्ती उपाय के रूप में एक विशेषज्ञ दल (अध्यक्ष : ओ.पी.सोढ़ानी) का गठन नवंबर 1994 में किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट जून 1995 में प्रस्तुत कर दी थी। इस समूह ने विदेशी मुद्रा बाजार को विकसित, गहन तथा व्यापक बनाने, जोखिम प्रबंधन को सुनिश्चित करने, बाधाओं को हटाकर बाजार में दक्षताओं को बढ़ाने, नए उत्पादों को शुरू करने, तथा आंतरिक नियंत्रणों को मजबूत बनाने के लिए अनेक सिफारिशें कीं। अनेक बाद की कार्यवाहियां इस रिपोर्ट पर आधारित हैं।

4.74 रिजर्व बैंक द्वारा 1997 में गठित पूंजी खाते की परिवर्तनीयता संबंधी समिति (सीएसी) (अध्यक्ष : एस.एस.तारापोर) ने पूंजी खाते की परिवर्तनीयता के आगे का रास्ता सुझाया -जिसमें यदि तीन महत्वपूर्ण

बाक्स IV.2

विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम, 1999

1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों में औद्योगिक और व्यापार नीतियों में सुधारों ने, जो बदलते अंतरराष्ट्रीय आर्थिक और व्यापार संबंधों के अनुरूप थे, औद्योगिक वृद्धि और निर्यात संवर्धन की गति को बढ़ाने के लिए बढ़े हुए विदेशी निवेश और पूंजी के आगमों के लिए अधिक अनुकूल परिवेश की आवश्यकता को बढ़ा दिया। एक व्यापक नए विधान - विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम 1999 में बनाया गया -जिसने वास्तव में विदेशी क्षेत्र की नीतियों में किए गए उन बदलावों पर जो 1990-91 में शुरू किए गए थे, कानूनी मोहर लगा दी। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, फेमा में कठोर अनुप्रवर्तन संबंधी प्रावधानों को, जो फेरा में थे, हलका कर दिया गया, अभियोजन पक्ष को अभियोगी व्यक्ति के अपराध को सिद्ध करना होगा। इसके अलावा, फेमा ने फेमा के प्रावधानोंके उल्लंघन पर केवल मौद्रिक दंड देने का ही प्रावधान है, फेमा के प्रावधानों का उल्लंघन करने पर दीवानी प्रक्रिया के अंतर्गत निपटा जाएगा जिसके लिए मिले जुले (मिश्रित) नियमों, अधिनिर्णायक प्राधिकरण, विशेष निदेशक (अपील) तथा अपीलिय न्यायाधिकरण के रूप में अलग से प्रशासनिक प्रक्रिया-

तंत्र स्थापित किया गया। इसके अलावा, विधि की प्रत्येक प्रक्रिया के लिए उक्त अधिनियम में एक समय-सीमा निश्चित की गई है। संमिश्रण की संकल्पना फेमा का दूसरा उल्लेखनीय पहलू है। फेरा के अंतर्गत सभी उल्लंघनों पर प्रवर्तन निदेशालय के पृथक जांच और अधिनिर्णय के अधीन आते थे। फेमा में इन उल्लंघनों को संमिश्रित करने का अवसर प्रदान किया गया है, जिसके अनुसार, उल्लंघनकर्ता को स्वतः यह अवसर प्राप्त होता है कि वह संमिश्रण प्राधिकारी के समक्ष उल्लंघनों को एक साथ मिलाने का अनुरोध कर सकता है। संमिश्रण प्राधिकारी को इस आवेदन को 180 दिनों के भीतर निपटाना होता है।

भारत सरकार ने, हालही की एक अधिसूचना में रिजर्व बैंक को फेमा के अंतर्गत सभी उल्लंघनों के लिए संमिश्रण प्राधिकारी के रूप में अधिसूचित किया है। केवल उन मामलों को छोड़कर जो हवाला लेनदेनों से संबंधित हैं, उनके लिए संमिश्रण प्राधिकारी अनुप्रवर्तन निदेशालय होगा। नई प्रक्रिया फेमा के उल्लंघनों के मामलों को शीघ्र तथा निर्बाध रूप से निपटा सकेगा।

पूर्व-शर्तें - राजकोषीय समेकन, निर्दिष्ट मुद्रास्फीतिगत लक्ष्य तथा वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ बनाना- रखी गई थीं, उसने उदारीकरण के अनेक उपायों की सिफारिशों की थीं, जिसमें विदेशी मुद्रा के सभी लेनदेनों को संचालित करने वाले वैधानिक ढांचे में परिवर्तन भी शामिल हैं। उदारीकरण के ये उपाय विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, संविभागीय निवेश, संयुक्त उद्यमों / पूर्णतः स्वाधिकृत सहायक संस्थाओं में भारतीयों द्वारा विदेशी निवेश, परियोजना निर्यात, विदेशों में भारतीय कंपनी कार्यालय खोलने, विदेशी मुद्रा अर्जकों की विदेशी मुद्रा हकधारिता (इइएफसी) को बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने, जब्त करने, निर्यातों के लिए ऋण स्वीकृत करने की अनुमति देने तथा ऋण और इक्विटी बाजारों में उनके निवेश जोखिमों के एक भाग के रूप में उनके फारवर्ड को सुरक्षित करने के लिए विदेशी संस्थागत निवेशों को अनुमति देने से संबंधित थे।

4.75 फेरा 1973 को निरस्त किया गया और उसके स्थान पर एक नया विधान - विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (फेमा), 1999, जून 2000 से लागू किया गया जैसा कि इस अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है, इस अधिनियम का उद्देश्य था - विदेश व्यापार तथा भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा भारत में विदेशी मुद्रा बाजार का सुव्यवस्थित विकास करना और उसे बनाए रखना "जो कि पुराने अधिनियम के अंतर्गत देश की विदेशी मुद्रा को संसाधनों को सुरक्षित रखने तथा उसके उचित उपयोग" के दृष्टिकोण में स्पष्ट बदलाव था दर्शाता है। नीतिगत दृष्टिकोण में इस बदलाव का रिजर्व बैंक के परिचालनों के लिए उल्लेखनीय निहितार्थ को अनिवार्य बना दिया (बाक्स IV.2)। नई प्रणाली के अंतर्गत सभी चालू खाता के भुगतान, सरकार द्वारा अधिसूचित भुगतानों के अलावा, वास्तविक लेनदेनों के संबंध में उचित विदेशी मुद्रा के लिए बिना किसी प्रतिबंधों के प्राधिकृत व्यापारियों से प्राप्त करने के पात्र हैं। वस्तुओं और सेवाओं के निर्यातों के संबंध में प्रत्यर्पण संबंधी अपेक्षाएं बनी रहेंगी। तथापि पूंजी खाते के लेनदेनों पर रिजर्व बैंक का आवश्यक विनियामक अधिकार क्षेत्र बना रहेगा।

4.76 रिजर्व बैंक ने अनेक प्रयोजनों के लिए विदेशी मुद्रा जारी करने के लिए प्राधिकृत व्यापारियों को पर्याप्त शक्तियां प्रदान की हैं तथा वह विदेशी मुद्रा बाजार के विकास पर अपना ध्यान केंद्रित करता रहा है। विदेशी मुद्रा बाजार को गहन बनाने के लिए काफी संख्या में उत्पाद शुरू किए गए हैं तथा नए-नए खिलाड़ियों की प्रविष्टि की अनुमति दी गई है। अतिरिक्त सुरक्षा लिखतें जैसे विदेशी मुद्रा रुपया विकल्प शुरू किए गए हैं तथा प्राधिकृत व्यापारियों को अनुमति दी गई है कि वे नवोन्मेषी उत्पाद जैसे- क्रॉस करेंसी विकल्प, ब्याज दर और करेंसी स्वैप (अदलाबदली) केप्स एवं कॉलर्स तथा वायदा दर करार (एफआरए) का अंतरराष्ट्रीय विदेशी मुद्रा बाजार में प्रयोग कर सकते हैं।

मौद्रिक नीति ढांचे में परिवर्तन

4.77 वैश्विक स्तर पर 1990 के बाद के दशक की अवधि से इसके साधनों, जिन्हें मौद्रिक प्राधिकारी व्यापक आर्थिक गतिविधियों के आकलन के लिए प्रयोग में लाते हैं, लिखतों के विकल्प तथा परिचालन प्रक्रियाओं में भारी समानता देखी गई है। चलनिधि के प्रबंधन में तथा घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों के बढ़ते हुए समेकन से बाजार के व्यापक परिवेश में पनपी अल्पावधि पर ध्यान को केंद्रित करने में अधिक सक्रियता रही है। केंद्रीय बैंकों, राजकोषीय प्राधिकारियों और वित्तीय बाजारों को संचालित करनेवाले विनियामक निकायों के बीच अब बेहतर समन्वय है। मौद्रिक नीति के संचालन में बेहतर उन्नयन हुआ है तथा केंद्रीय बैंक वित्तीय बाजारों की जटिलताओं से निपटने के लिए अपनी तकनीकी और प्रबंधकीय दक्षताओं को सुधारने में निरंतर लगे हुए हैं। मौटे तौर पर वैश्विक प्रवृत्तियों के अनुरूप भारत में मौद्रिक नीति के निर्माण का जोर वित्तीय क्षेत्र को क्रमिक रूप से अपविनियमित करने, बाजार के विकास के लिए प्रोत्साहन तथा मौद्रिक नियंत्रण के लिए अप्रत्यक्ष लिखतों के बढ़ते हुए उपयोग के लिए अवसर प्रदान पर रहा है।

ब्याज दरों का अपविनियमन

4.78 नियंत्रित ब्याज दर संरचना में सरलीकरण की प्रक्रिया सितंबर 1990 में शुरू हुई जिसमें उधार दरों के लिए निर्धारित स्लेबों को कम किया गया था। एक प्रमुख प्रयास के रूप में न्यूनतम उधार की दर को समाप्त कर दिया गया तथा रुपए 2 लाख से ऊपर की उधार के लिए उधार की दरों को अक्टूबर 1994 में मुक्त कर दिया गया था। इस अपविनियमन तथा ब्याज दरों के सरलीकरण के परिणामस्वरूप अब बैंकों को अपनी जमा और उधार की दरों को निर्धारित करने में काफी नमनीयता प्राप्त है। वर्तमान में, 2 लाख रुपए तक के निर्यात ऋण और लघु ऋणों पर ब्याज दरों की निर्धारित उच्चतम सीमा के सिवाय, अन्य सभी उधार की दरों को अपविनियमित कर दिया गया है। जमाराशियों की दृष्टि से केवल बचत जमा दरों तथा एनआरआई जमा दरों का निर्धारण रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। वर्तमान प्रथा के अनुसार बैंक अपनी उधार देने की दरें जोखिम प्रीमियम तथा/ अथवा मीयाद सम्बंधी प्रीमियमों को हिसाब में लेते हुए पूर्व घोषित आधारभूत मुख्य उधार दरों (बीपीएलआर) के संदर्भ में अपनी उधार दरें निर्धारित करते हैं। 'बीपीएलआर' का निर्धारण अनेक कारकों जैसे विनियामक अपेक्षाओं को सुरक्षित करने के लिए निधियों की वास्तविक लागत, परिचालन गत खर्चे, प्रावधानीकरण / पूंजी प्रभार और लाभ-मार्जिन को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। बीपीएल रुपए 2 लाख तक के लघु ऋणों के लिए उच्चतम ब्याज दर का काम भी करती है।

बैंक दरों का पुनः सक्रियकरण

4.79 संदर्भ दर के रूप में तथा मौद्रिक नीति के जोर को दर्शाने के लिए संकेतात्मक तंत्र के रूप में बैंक दर को अप्रैल 1997 में पुनः सक्रिय किया गया। रिजर्व बैंक से विभिन्न प्रकार के आर्थिक निभावों, जिनमें पुनर्वित्त भी शामिल है, पर ब्याज दरों को बैंक दर से जोड़ दिया गया। बैंक दर के सक्रिय किए जाने से रिजर्व बैंक को एक अतिरिक्त साधन (लिखत) मिल गया।

नए मौद्रिक समुच्चय

4.80 मुद्रा स्टॉक के स्वरूप, गुणवत्ता और आयाम में उभरती गतिविधियों के संदर्भ में मौद्रिक सर्वेक्षण के विश्लेषणात्मक पहलुओं की पुनः जांच करने के लिए दिसंबर 1997 में गठित मौद्रिक आपूर्ति : संकलन का विश्लेषण सिद्धांत तथा पद्धति संबंधी कार्यदल (अध्यक्ष : डॉ. वाइ.वी. रेड्डी) ने अपनी रिपोर्ट जून 1998 में प्रस्तुत कर दी थी। उक्त कार्यदल की प्रमुख सिफारिशों में शामिल हैं - नियमित अंतरालों पर रिजर्व बैंक, वाणिज्यिक और सहकारी बैंकों तथा संगठित वित्तीय क्षेत्र के व्यापक विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण, चार मौद्रिक समुच्चयों का संकलन [एम. (मौद्रिक आधार), एम₁ (संकीर्ण मुद्रा), एम₂ तथा एम₃ (व्यापक मुद्रा)], तीन चलनिधि समुच्चयों की शुरुआत (एल₁, एल₂ तथा एल₃), परंपरागत बैंक ऋण में न झलकने वाली मदों को भी शामिल करके ऋण की परिभाषा को व्यापक बनाना, बैंकिंग प्रणाली की निवल विदेशी मुद्रा आस्तियों की पुनः परिभाषा करना जिसमें बैंकों की (क) अपनी एफसीएमआर(बी) जमा राशियां तथा (ख) विदेशी मुद्रा उधार राशियों को घटाकर उनकी निवल विदेशी मुद्रा आस्तियों को भी शामिल किया जाए।

नीति का मुख्य बल - विविध संकेतक दृष्टिकोण की ओर बदलाव

4.81 नमनीय मौद्रिक लक्ष्य बढीकरण दृष्टिकोण के अंतर्गत, जिसका भारत ने 1980 के बाद के मध्य दशक से अनुसरण करना शुरू किया था, व्यापक मुद्रा (एम₃) में वृद्धि को इस रूप में प्रक्षेपित किया गया था जो कि प्रत्याशित सघट वृद्धि तथा मुद्रास्फीति के सहनीय स्तर के अनुरूप हो। इस प्रकार एम₃ ने नीति के सांकेतिक लंघन के रूप में कार्य किया। आरक्षित मुद्रा (आरएम) को परिचालनगत लक्ष्य के रूप में तथा बैंक आरक्षित निधियों को परिचालनगत लिखत के रूप में प्रयुक्त किया गया। जैसे-जैसे अपविनियमन ने विनिमय दर और ब्याज दरों के निर्धारण में बाजारी शक्तियों की भूमिका बढ़ाई, मुख्यतः पूंजी के आगम के कारण चलनिधि में हुई वृद्धि की वजह से मौद्रिक लक्ष्यबद्ध करने का ढांचा दबाव में आ गया। मात्रात्मक परिवर्तियों की तुलना में ब्याजदरों और विनिमय दरों के बढ़ते हुए महत्व के साथ-साथ मौद्रिक नीति को अंतवर्ती संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र में बदलाव आने के बढ़ते हुए प्रमाण भी देखे गए। इन गतिविधियों के कारण मौद्रिक नीति के ढांचे की समीक्षा करना आवश्यक

हो गया और रिजर्व बैंक ने 1998-99 से एक अधिक व्यापक “बहुविधि संकेतक दृष्टिकोण” को अपना लिया। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत, नीति के सापेक्ष महत्व को विभिन्न बाजारों में (जैसे मुद्रा बाजार, पूंजी बाजार और सरकारी प्रतिभूति बाजार) ब्याज दरों या प्रतिलाभ की दरों, मुद्रा पर उच्च बारंबारता के आंकड़े तथा बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों, राजकोषीय स्थिति, व्यापार और पूंजी प्रवाहों, मुद्रास्फीति की दर, विनिमय दर, विदेशी मुद्रा पुनर्वित्त पोषण तथा लेनदेनों एवं उत्पादन आंकड़ों से प्राप्त किया जाता है।

4.82 इन बहुविधि संकेतकों की निगरानी करने के लिए अनेक संस्थागत व्यवस्थाएं स्थापित की गई हैं। वित्तीय बाजार समिति दैनिक आधार पर वित्तीय बाजारों की गतिविधियों की निगरानी करती है। उक्त समिति मौद्रिक दरों, विदेशी मुद्रा विनिमय, हानि और वायदा दरों, मुद्रा तथा विदेशी मुद्रा दोनों बाजारों में निधि के आवागमन की मात्रा, सरकारी प्रतिभूति बाजार में आय की दरों तथा परिमाणों, तथा मौद्रिक तथा विदेशी मुद्रा बाजारों में अन्य गतिविधियों और बैंकिंग तथा अन्य बाजार संकेतकों की समीक्षा करती है। उक्त समिति चलनिधि की स्थितियों का त्वरित आकलन करती है तथा मुद्रा और प्रतिभूति बाजारों में हस्तक्षेप के लिए कार्य नीतियों की सिफारिशें करती है।

4.83 अनौपचारिक मौद्रिक नीति की रणनीति संबंधी बैठकों में मौद्रिक और चलनिधि संबंधी स्थितियों तथा संबंधित संकेतकों की समीक्षा की जाती है, तथा संबंधित मुद्दों पर तकनीकी अध्ययनों के निष्कर्षों पर आधारित नीतिगत रणनीतियों पर चर्चा तथा मौद्रिक नीति से संबंधित विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर अनुवर्ती कार्रवाइयों की समीक्षा की जाती है। बैंकों के साथ संसाधन प्रबंध की चर्चाओं में बैंकों के प्रमुख स्रोतों और निधियों के उपयोग संबंधी अनुमानों को प्राप्त करने, उनकी समीक्षा करने, अनुमानित लक्ष्यों पर गणात्मक सूचना के संग्रहण तथा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में बैंकों द्वारा अपनाई जाने के लिए प्रस्तावित रणनीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने, नीति पर की गई घोषणाओं पर प्रतिसूचना तथा नीति की भावी दिशा पर सुझावों को प्राप्त करने, एवं चलनिधि और बाजार की स्थितियों पर बैंकों के अनुभव प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। मुद्रा और सरकारी प्रतिभूतियों तथा विदेशी मुद्रा बाजारों पर तकनीकी सलाहकार समिति मुद्रा और सरकारी प्रतिभूति बाजारों की गतिविधियों पर निरंतर आधार पर रिजर्व बैंक को परामर्श देती रहती है। मौद्रिक नीति के अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राप्त विचारों और लिए गए निर्णयों को नीति संबंधी कार्रवाई में परिणत किया जाता है।

अल्पावधिक चलनिधि प्रबंधन

4.84 जैसे-जैसे मौद्रिक नीति की प्रत्यक्ष लिखतों पर निर्भरता में कमी आई, तो प्रणाली में विद्यमान चलनिधि का प्रबंधन सरकारी प्रतिभूतियों

की सीधी खरीद / बिक्रियों तथा दैनिक रेपो तथा रिवर्स रेपो परिचालनों के रूप में खुले बाजार परिचालनों के माध्यम से अधिकाधिक रूप में किया जाने लगा। खुले बाजार के परिचालनों की अनुपूर्ति बैंक दर / रेपो दर में परिवर्तनों के माध्यम से रिजर्व बैंक की स्थायी सुविधाओं तथा प्रत्यक्ष ब्याज दर संकेतकों द्वारा की गई। अल्पावधिक चलनिधि प्रबंधन में सहायता नियमित आधार पर रेपो संचालन द्वारा की गई। रेपो और रिवर्स रेपो के नाम अंतरराष्ट्रीय प्रयोगों के अनुसार (रेपो / रिवर्स रेपो रिजर्व बैंक द्वारा चलनिधि को बढ़ाने / खपाने को दर्शाते हैं) 9 अक्टूबर 2004 से आपस में अदले-बदले गए।

4.85 दिसंबर 1992 और मार्च 1995 की अवधि के बीच रिजर्व बैंक ने प्रारंभ में एक दिन, दो या तीन दिनों के माध्यम से साप्ताहिक चक्र में पांचों दिनों को कवर किया जिसे बाद में 14 दिवसीय चक्र में बदल दिया गया जिसने कि रिजर्व राशि को पूरा करने की अवधि को समाहित कर लिया। तंग चलनिधि की परिस्थिति के अंतर्गत मांग में कमी होने के कारण मार्च 1995 के बाद से रेपो के प्रचलन को बंद कर दिया गया। और 1997 के प्रारंभिक अवधि में उसे पुनः शुरू किया गया। 3-4 दिनों के चक्र वाले रेपो पुनः शुरू किए गए। चूंकि अल्पावधि के रेपो खपायी जानेवाली चलनिधि की मात्रा का निर्णय करने में रिजर्व बैंक को अधिक प्रबंधन - सुविधा प्रदान करते हैं, जो आपूर्ति और मांग की स्थितियों पर निर्भर करती है। रेपो-दरें चलनिधि की स्थितियों को दर्शाने के अलावा, पाक्षिक मांग मुद्रा दरों के लिए आधार प्रदान करती हैं। तंग चलनिधि की स्थितियों में, प्राथमिक व्यापारियों को रिजर्व बैंक की चलनिधि सहायता रिजर्व बैंक को बाजार में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने में और उसके द्वारा पाक्षिक मांग मुद्रा दरों पर दबावों को कुछ कम या संतुलित कर पाने में समर्थ बनाती है। चलनिधि समायोजन सुविधा मुद्रा नीति की मुख्य परिचालन लिखत के रूप में उभरी है। जो रिजर्व बैंक को वित्तीय बाजार की विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के अंतर्गत अल्पावधिक चलनिधि को नियंत्रित करने में रिजर्व बैंक की मदद करती है। चलनिधि समायोजन सुविधा दैनिक रेपो और रिवर्स रेपो की नीलामियों के माध्यम से परिचालित होती है जो नीतिगत उद्देश्यों के अनुरूप अल्पावधिक ब्याजदरों के लिए मार्जिन निर्धारित करती है। चलनिधि के प्रबंधन को बेहतर बनाने की दृष्टि से तथा बाजार सहभागियों से प्राप्त सुझावों के फलस्वरूप रिजर्व बैंक ने 28 नवंबर 2005 से एक दूसरी चलनिधि समायोजन सुविधा शुरू की है। इस प्रकार वर्तमान में रेपो और रिवर्स रेपो दिन में दो बार संचालित किए जाते हैं। हालांकि शनिवार के लिए ब्याज दरों का कोई औपचारिक लक्ष्य नहीं है, फिर भी चलनिधि समायोजन सुविधा ने रिजर्व बैंक को बैंकों की आरक्षित निधियों पर लक्ष्य बद्ध रहने पर जोर कम किया है, उत्तरोत्तर ब्याज दरों पर ध्यान केंद्रित करने में समर्थ बनाया है, इसने चलनिधिगत दबाव को खतरे में डाले बिना नकदी आरक्षित अपेक्षाओं को कम करने में भी सहायता की है।

पूंजीगत आगमों के अंतर्गत मौद्रिक प्रबंधन

4.86 1990 के बाद के दशक के प्रारंभ में संरचनागत सुधारों को अपनाए जाने तथा बाह्य क्षेत्र के उदार बनाए जाने के कारण, भारतीय अर्थ व्यवस्था ने पूंजीगत आगमों में तीव्र वृद्धि का अनुभव किया। जहाँ पूंजीगत आगमों ने बाह्य क्षेत्र के वित्त पोषण संबंधी बाधाओं को कम किया, उन्होंने मौद्रिक नीति के संचालन के लिए भी द्विविधा उत्पन्न की। इन परिस्थितियों में विदेशी मुद्रा विनिमय दर में तीव्र उतार-चढ़ाव को सीमित रखने तथा विदेशी मुद्रा बाजार में स्थितियों को सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित बनाए रखने के उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन हो गया। खासकर, यदि पूंजीगत आगम विदेशी मुद्रा की मांग से भी ज्यादा हो गया हो। देशी मुद्रा में वृद्धि होने से यह अवसर विदेशी मुद्रा की अधिक आपूर्ति को बाहर निकालने के लिए केंद्रीय बैंक से हस्तक्षेप की आवश्यकता की मांग करती है। ऐसा करते हुए, अधिकारिक आरक्षित मुद्रा के बढ़ जाने का अर्थ होता है प्राथमिक मुद्रा आपूर्ति का तत्काल बढ़ जाना जिससे मूल्य स्थिरता को बनाए रखने के लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता जुड़ी होती है।

4.87 चलनिधि समायोजन सुविधा के अलावा, जो अनिवार्यता, चलनिधि के दैनिक प्रावधान का साधन है, अन्य अनेक तरीकों से निष्प्रभावीकरण के कार्य भी किए जाते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अंतर्गत रिजर्व बैंक को संपार्श्विक प्रतिभूतियों के बिना 5 करोड़ रु. की असली प्रदत्त पूंजी से ज्यादा की राशि उधार लेने की अनुमति नहीं है। गत अवधि में रिजर्व बैंक ने गैर विपणनयोग्य विशेष प्रतिभूतियों को (जो मुख्यतः तदर्थ खजाना बिलों द्वारा खरीदी गई थी) विपणन योग्य प्रतिभूतियों के रूप में बदलकर खुले बाजार के परिचालन करने में अपनी योग्यता में वृद्धि की है। ऐसी सारी प्रतिभूतियाँ के स्टॉक को सितंबर 2003 में पूर्णतः बदल लिए जाने पर रिजर्व बैंक ऐसे परिचालन चलाने में समर्थ हो गया। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के वर्तमान प्रावधानों के अंतर्गत रिजर्व बैंक अपनी प्रतिभूतियाँ जारी नहीं कर सकता तथा ऐसे विकल्प को सामान्यतः भारत में समर्थन भी नहीं मिलता है। इसके अलावा, केंद्रीय बैंक के बिल / बांड निष्प्रभावीकरण की संपूर्ण लागत रिजर्व बैंक के तुलन पत्रों पर पड़ेगी। इसके अतिरिक्त, जोखिम-मुक्त दो प्रकार की प्रतिभूतियाँ की विद्यमानता - श्रेष्ठ प्रतिभूति और केंद्रीय बैंक की प्रतिभूतियाँ - बाजार को विखंडन की ओर ले जाती हैं। और अंतिम चूंकि सरकार रिजर्व के पास अपने अधिशेषों पर सांविधिक रूप से ब्याज अर्जित नहीं कर सकती, अतः इसकी अधिशेष निष्क्रिय पड़ी आस्तियों के रूप में सरकार की लागतों को बढ़ने से बचाने की दृष्टि से रिजर्व बैंक द्वारा प्राप्त इसकी अपनी प्रतिभूतियों में निविष्ट कर दिये जाते हैं। तथापि, यह व्यवस्था, निष्प्रभावीकरण के परिचालनों के लिए और समग्रतः चलनिधि प्रबंधन के लिए सरकारी प्रतिभूतियों के स्टॉक की उपलब्धता को समाप्त कर देती है।

4.88 बाजार स्थिरीकरण योजना (एमएसएस) रिजर्व बैंक को चलनिधि प्रबंधन के लिए एक अतिरिक्त लिखत उपलब्ध कराने की दृष्टि से तथा चलनिधि समायोजन सुविधा को निष्प्रभावीकरण के परिचालनों के भार से मुक्त करने के लिए अप्रैल 2004 में शुरू की गई थी। रिजर्व बैंक की विदेशी मुद्रा आस्तियों की अर्जन के कारण उत्पन्न हुई अल्पाधिक चलनिधि को खींचने तथा पूंजी प्रवाहों के मौद्रिक प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिए एमएसएस भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक के बीच एक व्यवस्था है। इस योजना के अंतर्गत रिजर्व बैंक नीलामियों के द्वारा खजाना बिल दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियां जारी करता है तथा इस निष्प्रभावीकरण की लागत सरकार द्वारा वहन की जाती है।

बुनियादी कार्यों में बदलाव

करेंसी (मुद्रा) प्रबंधन

4.89 वर्तमान में मुद्रा प्रबंधन एक रोचक चरण से गुजर रहा है। इस क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कदम उठाए गए हैं, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं- नोट मुद्रण प्रेसों की क्षमता को बढ़ाना; नोट-वितरण के नेटवर्क सहित निर्गम विभाग के परिचालनों में सुधार, नए सुरक्षा फीचर्स लागू करना तथा उच्चतर मूल्यवर्ग के नोट जारी करने की ओर झुकाव।

4.90 1990 के दशक की अवधि मुद्रा (करेंसी) की आपूर्ति में बाधाओं के रूप में देखी गई थी, चूंकि नोट मुद्रण प्रेस की क्षमता नए नोटों की मांग की तुलना में काफी कम हो गई थी। इस दशक के केवल अंतिम वर्ग में जाकर ही भारतीय रिजर्व बैंक नोट मुद्रण प्रा. लि. (बीआरबीएनएमपीएन) की मैसूर (कर्नाटक) तथा सालबनी (पश्चिम बंगाल) में रिजर्व बैंक की पूर्णतः स्वाधिकृत सहायक संस्था के रूप में दो प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करके, पर्याप्त क्षमता स्थापित की जा सकी, जो क्रमशः 1999 और 2000 में पूर्णतः परिचालन में आईं। एक सुरक्षित परिवेश में मुद्रण प्रसंस्करण नियंत्रण, लेखांकन तथा गुणवत्ता जांच के लिए आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित ये प्रेस सभी मूल्यवर्ग के नोट मुद्रित करने में सक्षम हैं। इन प्रेसों की संयुक्त क्षमता तीन-शिफ्टों के आधार पर प्रतिवर्ष 19.8 बिलियन नोट छापने की है। बीआरबीएनएमपीएल की प्रेसों विश्व में पहली ऐंसी बैंक नोट प्रेसों हैं जिन्हें मैसर्स रीन्सक वोस्ट फेलिस्टर, टीयूवी जर्मनी द्वारा मार्च 2001 में आइएसओ 9001:2000 का प्रमाणपत्र प्रदान किया गया।

4.91 बीआरबीएनएमपीएल की प्रिंटिंग प्रेस के परिचालन में आने से रिजर्व बैंक 1999 में “क्लीन नोट पालिसी” को अपना सका। क्लीन नोट पालिसी का उद्देश्य है - गैर निर्गम-योग्य नोटों को समय रहते प्रचलन से वापस ले लेना और उनके स्थान पर नए नोट जारी करना। यह अभ्यास रिजर्व बैंक की इस प्रक्रिया की आवश्यकता और वापस आहरित नोटों को निपटाने की क्षमता पर निर्भर है। जहाँ गंदे नोटों को करेंसी चेस्टो से

निर्गम कार्यालयों को ले जाने की गति को कई तरीकों से तेज किया जा सकता है, परंतु, वास्तविक मुद्दा यह है कि उसका स्वरूप क्या हो जिसमें प्रसंस्करण की क्षमता निर्गम विभागों में बढ़ाई जा सके ताकि उसकी गति उतनी हो जाए जितनी कि चेस्टों से भारी मात्रा में नोटों के आने की है। इस क्षमता को लक्ष्य से बढ़ाए जाने की सीमा को देखते हुए यह अनिवार्य हो गया कि हाथ से की जानेवाली कार्रवाई को मशीनों के जरिए किए जानेवाले प्रसंस्करण से समर्थन मिले। अतः रिजर्व बैंक ने नोट प्रसंस्करण गतिविधियों के मशीनीकरण को सभी मात्रा में अपनाया और 48 करेंसी सत्यापन तथा प्रसंस्करण प्रणालियों (सीवीपीएस) तथा 27 थ्रेडिंग और ब्रिकेटिंग प्रणालियों (एसबीएए) को 18 निर्गम कार्यालयों में लगाया। सीवीपीएस उच्चगति वाली पूर्णतः स्वचालित मशीनें हैं, जिन्हें करेंसी नोटों को सही और उचित श्रेणी के नोटों के छाँटने के लिए बनाया गया है, जिनकी 50,000 से 60,000 गंदे नोटों को प्रति घंटे छाँटने की क्षमता है। फिर नोटों को गिनकर उनके बंडल बना दिए जाते हैं ताकि 100-100 नोटों के पैकेट बनाये जा सकें और अनफिट नोट स्वतः ही ऑन लाइन थ्रेडिंग यूनिट में चले जाते हैं जहाँ उनको बहुत छोटे छोटे टुकड़ों में बांटा जाता है। काटे गए टुकड़ों को फिर एसबीएए के ब्रेकेटिंग यूनिट में सोख लिया जाता है जहाँ इन्हें तीव्र और उच्च हवाई दबाव में पूरी ईट का रूप दे दिया जाता है तथा वातावरण के लिए अनुरूप तरीके से निपटा दिया जाता है। नकदी को संभालने के कार्य का आधुनिकीकरण वाणिज्यिक बैंकों ने भी शुरू कर दिया गया है। संवितरण सरणियों पर आए दबाव को कम करने के लिए प्रथम उपाय के रूप में सिक्कों के संवितरण के कार्य को निजी परिवहन परिचालनों को दे दिया गया है। तथा रिजर्व बैंक स्टाफ तथा पुलिस कार्मिकों की सिक्कों के विप्रेषण के साथ जाने की प्रैक्टिस को बंद कर दिया गया है।

4.92 बैंक नोटों की सिक्योरिटी फीचर्स की समीक्षा की गई है और उसे समय - समय पर अद्यतन बनाया गया है। जिसमें इस क्षेत्र में अनुसंधान और औद्योगिकी के लाभ लिए गए हैं। दृष्टिकोण यह रहा है कि विद्यमान डिजाइन पर ही सिक्योरिटी फीचर्स में सुधार किया जाए ताकि जाली नोटों की समस्या से निपटा जा सके तथा पूर्णतः नई शृंखला के नोटों पर सिक्योरिटी फीचर्स का संयुक्त रूप बनाया जा सके। रेप्रो ग्राफिक तकनीकों के उन्नयन के साथ ही परंपरागत सिक्योरिटी फीचर्स अपर्याप्त पाए गए। नोटों की नई शृंखला जिसे “महात्मा गांधी शृंखला” का नाम दिया गया है, 1996 में शुरू की। एक बदला हुआ वाटर मार्क, विडों वाले (सिक्योरिटी थ्रेड (धागा)), अमूर्त छाया तथा दृष्टि से विकलांग लोगों के लिए उत्कीर्ण फीचर्स, कुछ नए फीचर्स हैं। सिक्योरिटी फीचर्स में अंतर राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के अनुरूप रिजर्व बैंक ने अब 2005 की शृंखला निकाली है जिनमें मशीन की सहायता से पढ़े जाने वाली सिक्योरिटी फीचर्स हैं। उच्चतर मूल्यवर्ग के बैंक नोटों में जोखिम की संभावना अधिक होने को देखते हुए रु.100, रु.500 तथा रु.1000 के बैंक नोटों में सिक्योरिटी फीचर्स को बढ़ाया गया

है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रिजर्व बैंक द्वारा जारी किसी भी डिजाइन के सभी नोट बैंक नोट बने रहेंगे हालांकि कुछ समय बाद एक विशेष डिजाइन के नोट आगे और न देखें जा सकेंगे क्योंकि उस डिजाइन में नए निर्गमों की कमी हो जाएगी।

4.93 तकनीकी नवोन्मेषों के अनुरूप रिजर्व बैंक ने बेहतर परिचलनगत दक्षता को प्रारंभ करने, बेहतर ग्राहक सेवा प्रदान करने तथा करेंसी प्रबंधन के क्षेत्र में नीति बनाने के लिए निर्णय लेने में समर्थक उपाय प्रदान करने की दृष्टि से एक समन्वित कंप्यूटरीकृत करेंसी परिचालन तथा प्रबंध - प्रणाली

बाक्स IV.3

भारत में भुगतान और निपटान प्रणालियों का विकास

भारत में सबसे पहले सिक्के भुगतान के साधनों के रूप प्रयुक्त किए गए बताए जाते हैं, जो या तो पंच मार्क के होते थे या चांदी और तांबे में गढ़े जाते थे। जहाँ सिक्के भौतिक रूप से जितनी मूल्य की धातु के होते थे वे उसका ही प्रतिनिधित्व करते थे, वहीं ऋण प्रणालियों ने जिनमें विनिमय बिल होते थे, अंतर स्थानीय अंतरणों को सुविधाजनक बनाया। भारत में विकसित ऋण लिखतों में सबसे महत्वपूर्ण थी “हुंडी”। उनका बारहवीं शताब्दी में व्यापक रूप से प्रयोग होता था। और वह आज तक जारी है। हुंडियों को या तो विप्रेषण लिखतों के रूप में (निधियों को एक स्थान से दूसरे स्थान अंतरण के लिए) या ऋण लिखतों के रूप में (उधार के लिए (आइओयू) या व्यापार लेन देन के लिए (जैसे विनिमय बिल) किया जाता था।

व्यापार और वाणिज्य की मात्रा में निरंतर आई वृद्धि होने के साथ-साथ तथा चेक आदि के प्रयोग में जनता के बढ़ते हुए विश्वास के कारण इन भुगतान लिखतों के माध्यम से लेनदेन तेजी से बढ़े। बैंक कर्मचारियों को बारंबार दूसरे बैंकों के पास जाना पड़ता था, वे चेकों और ड्राफ्टों को इकट्ठा करते थे, उन्हें आहर्ता बैंकों के पास प्रस्तुत करते थे तथा काउंटर पर नकदी लेते थे, जिसके रास्ते में खो जाने का डर रहता था। बैंकिंग प्रणाली के विकास के साथ-साथ, तथा चेकों की मात्रा बढ़ जाने से, एक संगठित चेक समाशोधन प्रणाली की आवश्यकता उभरी। प्रेसीडेंसी कस्बों में समाशोधन यूनियन बनाई गई तथा सदस्य बैंकों के बीच अंतिम निपटान प्रेसीडेंसी बैंकों पर आहरित चेकों के द्वारा किया जाता था। 1921 में इम्पीरियल बैंक की स्थापना के साथ, यह निपटान उस बैंक पर आधारित चेक द्वारा किया जाता था।

भुगतानों के निपटान के लिए साधन के रूप में जहाँ भारी रूप में नकदी का प्रयोग किया जाता था, ऐसे देश में गैर नकदी आधारित तरीके के रूप में बढ़ने की गति हालांकि क्रमिक रही है, परंतु उसकी प्रवृत्ति निश्चयात्मक रही। इनमें सबसे प्रमुख है - गैर नकदी आधारित पेपर आधारित चेक आधारित प्रणाली का उपयोग जिसमें बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि जारी चेक नकदी में रूपांतरित हो जाएं, इन चेकों के निपटान की प्रक्रिया जो उस बैंक के बीच जिसके ग्राहक ने चेक जमा कराया है, और उस बैंक के बीच जिसके ऊपर चेक आहरित किया गया है, विनिमय शुरू हुआ। बैंकिंग प्रणाली के विकास तथा चेकों की मात्रा में भारी वृद्धि ने एक संगठित चेक समाशोधन प्रक्रिया की आवश्यकता को बढ़ा दिया। बैंकों द्वारा प्रेसीडेंसी शहरों में समाशोधन संघ बनाए गए। तथा सदस्य बैंकों के बीच अंतिम निपटान प्रेसीडेंसी बैंकों के ऊपर चेक काटकर किया जाता था।

कलकत्ता समाशोधन बैंक संघ, जो कि उस समय सबसे बड़ी बैंकों की एसोसिएशन थी, ने 1938 में समाशोधन गृह के नियमों को अपनाया। इस

एसोसिएशन में 25 बड़े बैंक इसके सदस्य थे और 8 उप-सदस्य थे। तथापि उक्त एसोसिएशन में कलकत्ता में कार्यरत कई बैंकों को शामिल नहीं किया गया। ऐसे गैर समाशोधन सदस्य बैंकों के चेक, ड्राफ्ट आदि के समाशोधन बैंकों द्वारा प्रभारों की अदायगी पर किया जाता था। इसने उनके कारोबार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया, क्योंकि जनता उन बैंकों के साथ अपने खाते रखना पसंद नहीं करती थी जिनके चेकों को बाजार की स्वीकार्यता के लिए गंभीर अड़चनें होती थीं। इस समस्या से निपटने के लिए इन बैंकों ने आपस में मिलकर एक समूह बनाया जिसे मेट्रोपोलिटन बैंकिंग एसोसिएशन नाम दिया गया। इसके 50 सदस्य थे,, इस समूह ने 1939 में मेट्रोपोलिटन समाशोधन गृह का संचालन किया। इस संघ ने कलकत्ता समाशोधन गृह के साथ 1940 में एक समझौता किया। इसके अलावा दो और समाशोधन गृह कलकत्ता में चलाए गए। दि पाइनियर क्लियरिंग तथा बाक्स क्लियरिंग। बम्बई में समाशोधन चलाने वाला एक मात्र संघ था - बोम्बे क्लियरिंग हाउस। इसकी कोई समानांतर प्रणालियां/संस्थाएं नहीं थीं जैसा कि कलकत्ता का मेट्रोपोलिटन समाशोधन गृह, गैर समाशोधन बैंकों के चेकों, ड्राफ्टों, लाभांश, वारंटों आदि की उगाही के लिए 1941-42 में बोम्बे समाशोधन गृह द्वारा एक समान प्रक्रियाएं एवं प्रभार अपनाए गए।

1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद, प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित समाशोधन गृहों का अधिग्रहण रिजर्व बैंक द्वारा कर लिया गया। बैंकों के चालू खाता रखने की सुविधा के फलस्वरूप रिजर्व बैंक समाशोधन प्रक्रिया से होनेवाले निपटान पर पहुँचने का कार्य आसान बना सका। इस प्रकार केंद्रीय बैंक द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधा के साथ समाशोधन सुविधाओं की प्रारंभिक प्रक्रियाएं शुरू हुईं। ऐसे विभिन्न स्थानों पर जहाँ रिजर्व बैंक का अपना कोई कार्यालय नहीं होता था, इन स्थानों पर भी समाशोधन गृहों के प्रबंधन का कार्य रिजर्व बैंक की समीक्षाधीन हो गया।

रिजर्व बैंक ने लगभग पांच दशकों तक परंपरागत कार्य के रूप में समाशोधन गृह के कार्य करना जारी रखा। रिजर्व बैंक द्वारा अदा की जाने वाली विनियामक भूमिका की दृष्टि से, और चूंकि समाशोधन गृहों के सदस्य केंद्रीय बैंक द्वारा विनियमित वाणिज्यिक बैंक थे, अतः रिजर्व बैंक ने समाशोधन कार्यों के विनियमन की भूमिका अपने ऊपर ले ली। इस संबंध में की गई कुछ पहलों में बैंकर्स समाशोधन गृहों के लिए एक समान विनियमन और नियमों को बनाना तथा बड़े - बड़े समाशोधन गृहों के माध्यम से भुगतानों के प्रवाहों की निगरानी करना शामिल है।

(स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक (1998)।

(आइसीसी और ए एस) स्थापित करने का कार्य शुरू कर दिया है। इस परियोजना में करेंसी चेस्टों का रिजर्व बैंक के कार्यालयों के साथ नेटवर्किंग और कंप्यूटरीकरण किया जा रहा है ताकि सुरक्षित रूप में करेंसी चेस्टों के लेन देनों को त्वरित, दक्ष और त्रुटि-रहित रिपोर्टिंग और लेखांकन को सुविधाजनक बनाया जा सके। यह प्रणाली सभी क्षेत्रीय कार्यालयों में एक समान कंप्यूटिंग प्लेटफार्म करेंसी से संबंधित लेनदेनों के प्रसंस्करण, लेखांकन और प्रबंध-सूचना प्रणालियाँ उपलब्ध कराएगी।

4.94 भारत में मुद्रा का प्रचलन, परिमाण और मूल्य दोनों ही दृष्टि से कई गुना बढ़ गया है। 1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना के समय परिचालन में नोटों की संख्या लगभग 100 मिलियन नोटों की थी। 31 मार्च 2005 को परिचालन में नोटों की संख्या बढ़कर 36,985 मिलियन नोटों (मूल्य की दृष्टि से रु.3,61,229 करोड़) की हो गई। करेंसी के लिए मांग के प्रबंधन के एक भाग के रूप में रिजर्व बैंक का यह प्रयास रहा है कि निम्न मूल्यवर्ग के नोटों का सिक्काकरण करके तथा प्रचलन में उच्च मूल्य वर्ग के नोटों की ओर सचेत रूप में बढ़कर परिचालन में नोटों की मात्रा को सीमित रखा जाए।

4.95 रिजर्व बैंक अच्छी गुणवत्ता वाले और सुरक्षापूर्ण नोटों और सिक्कों की देश में पर्याप्त आपूर्ति करके अभीष्टतम ग्राहक सेवा सुनिश्चित करने की दृष्टि में अपने करेंसी प्रबंध संबंधी अपने परिचालन करना जारी रखे हुए है। स्वच्छ नोट जारी करने, जाली नोटों को रोकने संबंधी गहन उपाय समवर्ती उद्देश्य बने हुए हैं, साथ ही सिक्कोरिटी फीचर्स के उन्नयन का कार्य करना जारी है। बुनियादी संरचना के आधुनिकीकरण के साथ-साथ बैंक संस्थाओं के परिचालनों के कंप्यूटरो में सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) की पहलों को शुरू किए जाने तथा संचार सुविधाओं में हुए उन्नयन से ग्राहकों की संतुष्टि में और सुधार आने से करेंसी प्रबंधन में चल रहे सुधारों के लिए आवश्यक परिवेश निर्मित करने की आशा है।

भुगतान और निपटान प्रणालियाँ

4.96 किसी भी आधुनिक समाज में भुगतान और निपटान प्रणालियाँ आर्थिक गतिविधियों की रीढ़ की हड्डी मानी जाती हैं। भारतीय अर्थ व्यवस्था की एक मुख्य विशेषता अधिकांश वित्तीय लेन देनों में अधिकांश निपटान में नकदी का व्यापक उपयोग का होना है। जहाँ कई वर्षों से यह प्रवृत्ति बनी हुई है, यह उल्लेखनीय है कि भारत ने बहुत पहले ही गैर नकदी आधारित भुगतान प्रणालियों के उपयोग की शुरुआत करने में पहल की है जो न केवल समय की कसौटी पर खरी उतरी है, बल्कि उन्होंने व्यापार और कारोबार के संचालन के लिए एक मजबूत लिखत के रूप में अपने आपको स्थापित भी किया है (बाक्स IV.3)। वैश्वीकरण की बढ़ती हुई रफ्तार तथा प्रौद्योगिकीकरण में उन्नयन द्वारा सुरक्षित, सुदृढ़ तथा दक्ष भुगतान और निपटान प्रणालियाँ सारे विश्व

में बैंकों द्वारा मान्य की गई हैं। इसी संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआइएस) की सुव्यवस्थित महत्वपूर्ण भुगतान प्रणालियों के लिए बुनियादी सिध्दांत महत्वपूर्ण हो गए हैं।

4.97 भुगतान और निपटान प्रणालियों की महत्ता को मानते हुए रिजर्व बैंक ने अबसे एक दशक पहले देश के लिए एक सुरक्षित, दक्ष, उन्नत भुगतान और निपटान प्रणाली स्थापित करने का कार्य अपने ऊपर लिया था। चूंकि समाशोधन परिचालन दक्ष भुगतान और निपटान प्रणालियों के केंद्र बिंदु में हैं, अतः इन प्रणालियों पर मुख्य ध्यान दिया गया। विद्यमान प्रणालियों को सुधारने के उद्देश्य से सुधारों में मुख्य प्रेरक कारक था - प्रौद्योगिकी। प्रौद्योगिकीय गतिविधियों के साथ जिनका बैंकिंग क्षेत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव था, सुधारों की प्रक्रिया को तेज कर दिया गया जिससे अत्याधुनिक भुगतान और निपटान प्रणालियों में उपयोग के लिए प्रौद्योगिकी द्वारा बढ़ावा मिला। हाल ही की गतावधि में रिजर्व बैंक भुगतान और निपटान प्रणालियों के क्षेत्र में सुधारों पर जोर देता रहा है। रिजर्व बैंक के प्रयास बीआइएस के (ऊपर वर्णित) बुनियादी सिध्दान्तों के पूर्ण अनुपालन को सुनिश्चित करने पर रहा है। और उनमें से एक प्रयास का उद्देश्य जोखिमों को कम करने-विशेषकर निपटान और प्रणालीगत जोखिमों को घटाने के लिए तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) की शुरुआत करने का रहा है।

4.98 रिजर्व बैंक की प्रमुख चिंताएं जोखिम प्रबंध तथा जोखिम को कम करने से संबंधित हैं। विशेषकर प्रणालीगत जोखिमों से ये ऐसे जोखिम हैं जो किसी भुगतान और निपटान प्रणाली के समूह के सभी सहभागियों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। इसी उद्देश्य से तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) की आयोजना की गई जो कि अब वास्तविकता बन गई है। अपने वर्तमान स्वरूप में यह प्रणाली सभी अंतरबैंक लेनदेनों की संभाल लेगी तथा इसमें अभी जल्दी ही कुछ और फीचर्स जोड़े जाने हैं। बैंक एक ऐसी प्रणाली का उपयोग करने के लिए प्रस्तुत हो गए हैं जो नवीनतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग करती है और काफी सीमा तक नेट-वर्क आधारित सूचना के प्रवाह पर निर्भर करती है।

4.99 यह देखते हुए कि वित्तीय क्षेत्र ने रिजर्व की पहलों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया की है और बैंकिंग क्षेत्र भी समय के साथ कदम बढ़ा रहा है, अब रिजर्व बैंक ने ऐसेही नीतिगत निर्णय लिए हैं कि वह खुद भुगतान और निपटान प्रणालियों के वास्तविक प्रबंधन से अलग निकल रहा है। इस प्रकार अबसे कुछ वर्षों के लिए नए माइक्रो आधारित चेक प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना करने का कार्य वाणिज्यिक बैंकों को सौंप दिया गया है। इस दृष्टिकोण के अच्छे परिणाम आए हैं और रिजर्व बैंक अब ऐसे सामान्य प्रसंस्करण कार्यों की परिकल्पना करने लगा है जिनका प्रबन्धन और परिचालन पेशेवर संगठनों द्वारा किया जाएगा जिनका गठन बैंकों की सहभागिता से किया जा सकेगा। यह समाशोधन गृहों पर भी लागू होगा,

जो समाशोधन गतिविधियां करेंगे, परंतु निपटान का कार्य रिजर्व बैंक के पास ही बना रहेगा जो यह सुनिश्चित करेगा कि यह निपटान केंद्रीय बैंक की मुद्रा में किया जाए जैसा कि बीआइएस के बुनियादी सिद्धांतों (ऊपर उद्धृत) के अनुसार अपेक्षित है, इसके साथ रिजर्व बैंक ऐसे कार्यों पर विनियामक निगरानी रखना जारी रखेगा, जबकि वह स्वयं सेवा प्रदाता के रूप में कार्य नहीं करेगा। इसका अपवाद होगा, आर टी जी एस जो इसकी प्रणालीगत महत्त्व के कारण सारे विश्व में केंद्रीय बैंक के पास रखा गया है। आरटीजीएस, जो सभी सहभागियों को इलेक्ट्रॉनिक तरीके से कम जोखिम के साथ निधियों का अंतरण सुलभ कराता है, का परिचालन रिजर्व बैंक द्वारा किया जायेगा। इस प्रणाली को प्रणालीगत दक्षता को सुनिश्चित करने के अलावा मौद्रिक नीति के सिद्धांत के भी अनुकूल बनाया जाएगा।

सूचना प्रौद्योगिकी

4.100 सूचना प्रौद्योगिकी ने सारे विश्व में कारोबारों के कार्य कलाओं का रूपांतरण कर दिया है। इसने प्रणालियों की पहुँच और व्याप्तियों के बीच के अंतराल को पाट दिया है तथा उन्हें नवीनतम तथा सही सूचना के आधार पर बेहतर निर्णय लेने में समर्थ बना दिया है। उनकी लागत को कम कर दिया है तथा दक्षता में समग्र सुधार ला दिया है। भारतीय संदर्भ में, वित्तीय क्षेत्र विशेषकर बैंकिंग क्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा बनाई गई राह का प्रमुख हिताधिकारी रहा है। बैंकों और अन्य वित्तीय मध्यस्थक संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे उत्पादों एवं सेवाओं के केंद्र में सूचना प्रौद्योगिकी है। प्रौद्योगिकी का प्रभावी समेकन तथा सुदृढ़ कारोबारी प्रथाएं (संव्यवहार) कारोबारी प्रसंस्करण के पुनर्विन्यास की अपेक्षा रखती हैं तथा भारत में बैंकों को इस संबंध में की गई शुरुआत का अनुसरण करने की आवश्यकता है, ग्राहकों को अपेक्षाकृत नवीन सुपुर्दगी सरणियाँ - ओटोमेटिड टेलर मशीन (एटीएम) तथा अंशदायी (शेयर्ड) पेमेंट नेटवर्क के रूप में एटीएम की नेट वर्किंग, इन्टरनेट बैंकिंग तथा अधिकांश बैंकों द्वारा कोर बैंकिंग सोल्यूशन को लागू करना कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

4.101 बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के कार्यान्वयन में रिजर्व बैंक ने सक्रिय भूमिका निभाई है। सूचना प्रौद्योगिकी आधारित पहल तीन दूरगामी उद्देश्यों को पूरा करने पर ध्यान केंद्रित करेंगी-वे हैं- बेहतर हाउस कीपिंग, बेहतर ग्राहक सेवा, तथा समग्र प्रणालीगत दक्षता। रिजर्व बैंक के अंदर 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक प्रयासों का उद्देश्य - गतिविधियों के यंत्रीकरण को 1995 के बाद के दशक के दौरान परिचालनों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के कंप्यूटरीकरण के रूप में फैला दिया गया। रिजर्व बैंक ने वित्तीय क्षेत्र के लिए प्रौद्योगिक बिज्ञान दस्तावेज तैयार किया है जिसमें लगभग तीन वर्षों की मध्यम अवधि के दौरान सूचना प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए दृष्टिकोणगत रूपरेखा बनाई गई है। यह दस्तावेज बैंकों को अपनी

आईटी योजनाओं को रिजर्व बैंक द्वारा परिकल्पित बैंकिंग क्षेत्र के लिए समग्र दृष्टिकोण के अनुरूप बनाने में सहायता करेगा।

4.102 हाल के वर्षों में रिजर्व बैंक में जैनेटिक आर्किटेक्चर का अनुसरण करने वाली व्यापक प्रणालियां स्थापित करने तथा भारत में भुगतान और निपटान प्रणालियों की दक्षता बढ़ाने पर नए सिरे से बल दिया जाने लगा है। इसमें भुगतान और निपटान प्रणालियों के विनियमन और पर्यवेक्षण के लिए संस्थागत ढांचे को सुदृढ़ करने को प्राथमिकता दी जा रही है। इस पहल के एक भाग के रूप में, रिजर्व बैंक ने अपने केंद्रीय बोर्ड की एक समिति के रूप में भुगतान एवं निपटान प्रणाली विनियमन एवं पर्यवेक्षण बोर्ड (वीपीएसएस) का गठन किया है। इस बीपीएसएस के कार्यों और शक्तियों में सभी प्रकार की भुगतान और निपटान प्रणालियों के लिए मानक स्थापित करना, भुगतान और निपटान प्रणालियों को प्राधिकृत करना तथा इन प्रणालियों की लिए सदस्यता के लिए पात्रता मानदंड निर्धारित करना शामिल है। रिजर्व बैंक में भुगतान और निपटान प्रणाली विभाग (डीपीएसएस) के नाम से एक नए विभाग का भी गठन किया गया है। 1999 से कार्यरत राष्ट्रीय भुगतान परिषद ने बीपीएसएस की तकनीकी परामर्श समिति की मान्यता प्राप्त कर ली है। इस विज्ञान दस्तावेज में दिए गए निदेश मध्यावधि में भुगतान प्रणालियों को चुस्त - दुरुस्त और उन्नत बनाने में भी पथ का निर्माण करेंगे।

विनियमन और पर्यवेक्षण

4.103 वित्तीय क्षेत्रों में भारी मात्रा में विस्तार वित्तीय उत्पादों में प्रौद्योगिकी-समर्थ नवोन्मेष तथा वैश्विक समेकन की बढ़ती गहनता के संदर्भ में हाल के वर्षों में वित्तीय प्रणाली के विनियमन और पर्यवेक्षण पर नए सिरे से ध्यान केंद्रित किया गया है। वित्तीय प्रणाली में बैंकों की कार्यनीतिगत महत्ता ने केंद्रीय बैंकों के लिए, जो कि ऐतिहासिक रूप से अंतिम उधारदाता तथा बैंकिंग प्रणाली का पर्यवेक्षक है, यह आवश्यक बना दिया है कि वह एक व्यापक आर्थिक महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के लिए कार्य करे। हालांकि भारत में वित्तीय प्रणाली के अलग-अलग घटकों की कार्य - प्रणाली की निगरानी करने के अलग-अलग संस्थाएं (जैसे सेबी, इर्डा) हैं। पर्यवेक्षण और विनियामक ढांचे का पुनर्विन्यास करने के लिए तथा इन्हें अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के अनुरूप बनाने के लिए तथा साथ ही, बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा से निपटने के लिए वित्तीय संस्थाओं को पर्याप्त लचीलापन प्रदान करने के लिए तथा प्रौद्योगिकीय उन्नयन के फलस्वरूप उभरे कारोबारी अवसरों का लाभ उठाने के लिए रिजर्व बैंक ने अनेक पहलों की हैं।

4.104 बैंकिंग प्रणाली की ताकत को सुधारने तथा पर्यवेक्षण प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए नरसिंहम समिति II ने अनेक सिफारिशों (पूंजी पर्याप्तता, आस्तिगुणवत्ता, गैर निष्पादक आस्तियों के संबंध में) की

हैं। उक्त समिति ने यह देखा कि शिखर बैंक के विनियामक और पर्यवेक्षी कार्यों को अलग-अलग करने के लिए रिजर्व बैंक के वित्तीय पर्यवेक्षी बोर्ड (बीएफएस) के लिए स्वायत्त हैसियत पर विचार किया जाना चाहिए। उक्त समिति ने बीएफएस की पुनर्संरचना के लिए तथा वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफआरएस) के गठन के लिए विशेष सिफारिशों की हैं। समिति ने ये भी सिफारिशें की थीं कि विनियामक तथा पर्यवेक्षी प्राधिकारियों को इस क्षेत्र में अन्यत्र हो रही गतिविधियों को ध्यान में रखना चाहिए ताकि प्रभावी विनियामक मानदंड बनाए जा सकें तथा भारत की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें यहाँ लागू करना चाहिए परंतु, किसी भी रूप में इन मानदंडों की कठोरता को हल्का नहीं करना चाहिए ताकि ये निर्धारण विदेशों के सर्वोत्तम संव्यवहारों के समान हों। उक्त समिति ने बैंकिंग क्षेत्र की विधियों की समीक्षा की आवश्यकता को रेखांकित किया था, जैसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, बैंककारी विनियमन अधिनियम, राष्ट्रीकरण अधिनियम तथा भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम उक्त समिति द्वारा की गई सिफारिशों को प्रगामीरूप से लागू किया जा रहा है।

4.105 नरसिंहम समिति ॥ और अभी हाल ही की बेसिल ॥ सिफारिशों का अनुसरण करते हुए रिजर्व बैंक ने देश में एक सुदृढ़, दक्ष और ऊर्जस्वित वित्तीय प्रणाली सुनिश्चित करने की दृष्टि से अपने विनियामक और पर्यवेक्षी ढांचे को सुदृढ़ करने के लिए अनेक उपाय किए हैं। गैर निष्पादक आपत्तियों (एनपीए) के स्तर सीमित करने के उपायों में बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के बकाया ऋण शीघ्र अधिनियम तथा उनको वसूली के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरणों, लोक अदालत (जनता के दरबार) तथा आस्ति पुनर्निमाण कंपनियों तथा कंपनी ऋण पुनर्विन्यास प्रणाली-तंत्र की स्थापना शामिल है। संस्थाएं और बाजार सूचना के आधार पर लिए गए निर्णयों के अनुसार कार्य करें, यह सुनिश्चित करने के लिए रिजर्व बैंक ने बैंकों को अपनी वित्तीय स्थिति के संबंध में पारदर्शिता और प्रकटीकरण के स्तर को बढ़ाने के लिए मार्गदर्शी दिशा निदेश जारी किए हैं। (भारिबैं 2005)।

4.106 हाल के वर्षों में केंद्रीय बैंक अपना ध्यान अधिकाधिक रूप में न केवल अलग-अलग बैंकों पर, बल्कि वित्तीय स्थिरता के मुद्दों पर भी केंद्रित कर रहे हैं। बैंकों की अपनी विशिष्ट विशिष्टताओं को देखते हुए, गैर वित्तीय फर्मों की तुलना में बैंकों पर अधिक गहन विनियमन लागू हैं। जनता की जमा राशियां जुटाने की अपनी क्षमता के कारण बैंक अन्य फर्मों की अपेक्षा अधिक शक्ति संपन्न हैं। बैंकों की आस्ति देयता संरचना अन्य वित्तीय फर्मों से भिन्न है। जमा राशियां जो बैंकों की देयताओं का काफी बड़ा भाग होता है, मांग पर प्रतिदेय हैं, गैर जमानती हैं तथा उनके मूल धन का मूल्य नहीं बदलता है, जबकि किसी बैंक के ऋण तरल नहीं है, तथा ऋणों तथा अन्य आस्तियों के मूल्य में क्षरण हो सकता है।

4.107 यह अनुभव करते हुए कि परंपरागत पर्यवेक्षी संव्यवहार (प्रथाएं) उन्नत जोखिम प्रबंध तकनीकों के मुकाबले बासी पड़ गए हैं, बैंक विनियमन उत्तरोत्तर रूप से जोखिम - आधारित होता जा रहा है। पूंजी के मापन तथा पूंजी मानकों के अंतरराष्ट्रीय एकाभिमुखीकरण : एक संशोधित ढांचे (जो बासल ॥ के नाम से प्रसिद्ध है) ने विनियमन और जोखिम प्रबंधन को केंद्र-बिंदु में रख दिया है। बासल-॥ तीन स्तंभों पर खड़ा है: न्यूनतम पूंजीगत अपेक्षाएं; पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया तथा बाजार अनुशासन। भारत ने यह निर्णय लिया है कि सभी वाणिज्यिक बैंक बासल-॥ के मानदंडों को अनुपालन करेंगे: जिसमें न्यूनतम स्तंभ 1 के अंतर्गत ऋण जोखिम के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण तथा परिचालन गत जोखिम के लिए बुनियादी संकेतक दृष्टिकोण को 31 मार्च 2007 से अपनाया जाएगा। जहाँ तक पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया (स्तंभ ॥) का संबंध है, पर्यवेक्षकों की भूमिका यह आकलन करने की है, कि क्या बैंक अपने जोखिमों के संबंध में अपनी पूंजीगत अपेक्षाओं का उचित रूप से अनुमान लगा रहे हैं या नहीं और यदि आवश्यक हो तो पर्यवेक्षक उच्चतर पूंजी गत अपेक्षाएं बनाए रखने के लिए निर्णय देते हुए हस्तक्षेप कर सकते हैं। जहाँ तक स्तंभ 3 का संबंध है रिजर्व बैंक बैंकों को सूचित करता रहा है कि वे बाजार अनुशासन को बनाए रखने के लिए प्रकटीकरण करें।

4.108 बासल ॥ के अनुपालन के लिए प्रारंभ में भारत में बैंकों के लिए और अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी। वह इस तथ्य के कारण है कि बासल 1 के अंतर्गत परिचालनगत जोखिम को ध्यान में नहीं रखा गया था तथा बाजारगत जोखिम के लिए पूंजीगत प्रकार का अभी हाल ही तक निर्धारण नहीं किया गया था। चूंकि वाणिज्यिक बैंक मार्च 2007 की समाप्ति से बासल ॥ मानदंडों का अनुपालन शुरू करनेवाले हैं, तो इनके अनुपालन में रह गई कमियों को पहचानने के लिए तथा अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता का अनुमान लगाने तथा उसकी मात्रा निश्चित करने के लिए, जिसे कि इन बैंकों को बनाए रखना है, रिजर्व बैंक पर्यवेक्षण - क्षमता निर्माण के उपायों पर ध्यान केंद्रित करेगा। अंततः भावी बैंकिंग के लिए समेकन, प्रतिस्पर्धा और जोखिम प्रबंधन के महत्व को मानते हुए रिजर्व बैंक बेहतर कंपनी संचालन और वित्तीय समावेश पर बल देना जारी रखेगा।

IV. सम सामयिक मुद्दे

4.109 पिछले तीन वर्णनात्मक भागों में 1935 से लेकर अब तक की अवधि में केंद्रीय बैंक के कार्यों में उल्लेखनीय विस्तार तथा रूपांतरण के बारे में बताया गया है। वित्तीय संस्थाओं और बाजारों के विकास के लिए रिजर्व बैंक द्वारा की गई पहले अर्थव्यवस्था की, विशेषकर वित्तीय क्षेत्र की, संरचनागत विशेषताओं तथा उभरती हुई परिस्थितियों में रिजर्व बैंक के प्रतिसाद को भी दर्शाती है। तथापि, मौद्रिक नीति किसी भी केंद्रीय बैंक की तरह रिजर्व बैंक की केंद्रीय गतिविधि रही है। अनेक मुद्दे -

सारणी 4.1 : चुनिंदा देशों में मौद्रिक ढांचे की विशेषताओं के लिए संक्षिप्त अंक

(अधिकतम का प्रतिशत)

देश	विशिष्ट उद्देश्यों पर अल्प और मध्यावधिक नीतिगत बल				संस्थागत विशेषताएं			मौद्रिक विश्लेषण के विभिन्न प्रकार के उपयोग और महत्व			संरचनागत विशेषताएं
	विदेशी मुद्रा विनिमय दर पर बल	मुद्रा पर बल	मुद्रा स्फीति पर बल	स्व-विवेक*	स्वतंत्र	केंद्रीय बैंक की सरकार के प्रति जवाबदेही	नीति संबंधी स्पष्टीकरण	मुद्रा स्थिति की संभावनाएं	मॉडलों और पूर्वानुमानों का प्रयोग करते हुए विश्लेषण	मुद्रा और बैंकिंग क्षेत्र के विश्लेषण का महत्व	लिखतों का निर्धारण करने में वित्तीय स्थिरता संबंधी मुद्दों का महत्व
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बांग्ला देश	31	75	44	63	56	83	39	25	6	56	17
चीन	25	88	31	41	68	100	63	83	72	78	33
भारत	6	50	44	75	83	67	75	0	11	89	67
इंडोनेशिया	6	63	50	66	56	83	83	50	100	89	83
मलेशिया	38	0	44	75	85	83	71	67	17	56	67
श्रीलंका	6	19	19	94	54	58	48	17	11	56	33
थाईलैंड	6	6	31	75	82	50	67	0	83	67	83
जर्मनी	13	88	19	28	96	17	70	50	56	56	33
जापान	0	0	50	50	93	...	89	75	72	78	50
कोरिया	6	75	63	59	73	83	88	17	78	100	58
स्वीडन	13	0	100	6	97	83	95	100	78	33	42
स्विटजरलैंड	19	75	19	44	90	17	86	33	50	56	8
यू के	0	0	100	0	77	100	94	100	94	56	16
यू एस ए	0	25	19	84	92	83	95	83	89	33	33

* यह विवेक केवल विनिमय दर को लक्षित करने, मुद्रा को लक्ष्य बद्ध करने तथा मुद्रा स्फीति को लक्षित करने पर निर्भर करता है। इस विवेक की गणना इन अंकों के अधिनिकतम को दुगना करके इसमें से अन्य दो को घटाकर निकाला जाएगा। फिर इसे जोरो से 100 के बीच एक इन्डेंस में बदल दिया जाता है। जहाँ उच्च अंक का अर्थ होगा अधिक विवेक।

स्रोत : फ्राइ आदि (2000)

पारदर्शिता, नीतिगत बल, तथा केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता - ये ऐसे विषय रहे हैं जिनपर सघन चर्चा हुई है। विशेषकर अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों को ही अपनाने के मुद्दे पर। इसी से संबंधित प्रश्न यह है कि एक स्पष्ट उद्देश्य के रूप में वित्तीय स्थिरता को प्राप्त करने का प्रयास मौद्रिक नीति के प्रबंधन को कम कर देती है (नाचने, 2005)। यह उल्लेखनीय है कि ये मुद्दे परस्पर संबद्ध हैं। पारदर्शिता केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता के साथ-साथ चलती है। यदि मौद्रिक नीति के निर्णय स्वतंत्र रूप से लिए जाने हैं तो आम जनता तथा विधानपालिका के लिए इसका औचित्य स्पष्ट नीतिगत उद्देश्यों की घोषणा मौद्रिक नीति के निर्माण में पारदर्शिता का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा रिजर्व बैंक की परिचलनगत स्वायत्तता पारदर्शिता की ओर बढ़ने की पूर्व-शर्त के रूप में देखी जाती है।

4.110 विश्व के परिवेश में भारत के मौद्रिक ढांचे की तुलना करना ठीक होगा। भारतीय संदर्भ में, विशिष्ट रूप से अल्पावधिक और मध्यावधिक मौद्रिक के प्रमुख उद्देश्यों (विनिमय दर पर ध्यान केंद्रित करना हो या मुद्रा पर ध्यान देना या मुद्रा स्थिति को लक्षित करना) के मुकाबले विवेक या सावधानी को उच्चतर महत्व प्राप्त होता है। केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता को जबाबदेही और पारदर्शिता के मुकाबले अधिक महत्व प्राप्त होता है। वस्तुतः स्वायत्तता पर जोर अधिकांश देशों में केंद्रीय बैंकों के मौद्रिक

ढांचे में सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। हालांकि अनेक विकासशील अर्थ व्यवस्थाओं में स्वतंत्रता के मुकाबले सरकार के प्रति जबाबदेही ऊपर रहती है। वित्तीय स्थिरता के मुद्दे को भारत में उच्च स्थान प्राप्त है जो कि संकट से प्रभावित एशियाई अर्थव्यवस्थाओं (इंडोनेशिया, कोरिया, मलेशिया तथा थाईलैंड) से तुलनीय है। नीति विश्लेषण के मामले में भारत का ध्यान मुद्रा और बैंकिंग पर केंद्रित रहा है। मुद्रा स्थितिगत संभावनाओं के विश्लेषण के क्षेत्रों में तथा माडलों और पूर्व - अनुमानों के क्षेत्र में भारत की स्थिति की तुलना अबांछनीय है (सारणी 4.1)।

मौद्रिक नीति के निर्माण में पारदर्शिता

4.111 केंद्रीय बैंकिंग का नीति निर्माण संबंधी परंपरागत दृष्टिकोण 'गोपनीयता' का रहा है या "अप्रत्याशित मौद्रिक नीति" कठोरतापूर्वक विनियमित प्रणाली में प्रासंगिक थी जहाँ वित्तीय बाजार दिशा निदेशों के लिए केंद्रीय बैंकों की ओर देखा करते थे और केंद्रीय बैंकों को सरकार के हाथ माना जाता था। केंद्रीय बैंक जनता के प्रति जवाब देह नहीं होते थे। मुक्त उद्यमी बाजारों के संदर्भ में यह उत्तरोत्तर रूप में स्वीकार किया जा रहा है कि वित्तीय संस्थान तर्कसम्मत निर्णय लेने में तभी समर्थ होंगे जब उनके पास नीतियों की पूरी पृष्ठभूमि उपलब्ध होगी। इस प्रकार पारदर्शिता

को न केवल बेहतर कंपनी संचालन के एक पहलू के रूप में, बल्कि वित्तीय संस्थाओं की सुदृढ़ता की पूर्व-शर्त के रूप में भी देखा जा रहा है। इस संबंध में विचारों की बढ़ती हुई एकाभिमुखता को देखते हुए, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सदस्य देशों को मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में पारदर्शिता या अच्छे संव्यवहार की एक संहिता को अपनाने की सिफारिश की है (सितंबर 1999)। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष की संहिता के अनुसार प्रभावी पारदर्शिता मौद्रिक और वित्तीय नीतियों पर पर्याप्त सूचना जारी किए जाने मात्र से अधिक अपेक्षा करती है - इसमें भूमिकाओं की स्पष्टता, केंद्रीय बैंकों के उत्तरदायित्व तथा उद्देश्य तथा इसकी नीतिगत कार्रवाई के पीछे विश्लेषणात्मक आधारों की अंतर्दृष्टि भी शामिल है।

4.112 इस पृष्ठभूमि में रिजर्व बैंक ने अंतरराष्ट्रीय वित्तीय मानकों और संहिता संबंधी स्थायी समिति तथा विशिष्ट पहलुओं की जांच करने के लिए अनेक परामर्शी दल गठित किए। मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में पारदर्शिता पर बने परामर्शी दल (अध्यक्ष : एम. नरसिंहम) ने भारत में मौद्रिक और वित्तीय नीतियों की पारदर्शिता की वर्तमान स्थिति का बारीकी से मूल्यांकन किया तथा उन क्षेत्रों की पहचान की जहाँ सुधार की आवश्यकता थी। एक अधिक पारदर्शी प्रणाली की ओर बढ़ने के प्रयास के साथ परामर्शी दल ने पाया कि यह सबसे अच्छा होगा यदि रिजर्व बैंक को केवल एक ही उद्देश्य दिया जाए, जबकि सरकार अपने लिए ऐसे उद्देश्यों के समूह का स्पष्ट निर्धारण करे जिसके लिए वह नीति के अपने अन्य लिखतों का उपयोग कर सके, इस तथ्य को मानते हुए कि पारदर्शिता विधायी ढांचे के साथ जटिलतापूर्वक जुड़ी हुई है। अतः इसने मौद्रिक नीति के उद्देश्यों पर और अधिक बल देने तथा वैधानिक संशोधनों द्वारा रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन करने की जरूरत को रेखांकित किया। इस परामर्शी दल की सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैं: ऋण प्रबंधन तथा मौद्रिक नीति संबंधी कार्यों को अलग-अलग करना ताकि रिजर्व बैंक को मौद्रिक नीति के परिचालन के लिए पृथक रूपसे चिंतन का अवसर (हेडरूम) मिल सके, भा.रि.बैंक के केंद्रीय बोर्ड की समिति के रूप में एक मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) की स्थापना करना; तथा रिजर्व बैंक को मौद्रिक नीति के लिए एकल उद्देश्य देना अर्थात् : मुद्रास्फीति की दर और फिर रिजर्व बैंक को असीमित लिखतों की आजादी देना।

4.113 भाग III में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों को विकसित करने तथा अपनाने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा किए गए उपायों के बारे में उल्लेख किया गया है। यहाँ यह जोड़ा जा सकता है कि शिक्षाविदों और बाजार के विशेषज्ञों को लेकर, जो विभिन्न नीतिगत मुद्दों पर विचार कर सकें एक व्यापक सहभागिता के साथ कार्य दल और समितियाँ स्थापित करके रिजर्व बैंक एक परामर्शी दृष्टिकोण अपना रहा है। रिपोर्टों के मसौदों को अक्सर जनता की और विशेषकर उद्योग संघों तथा स्वतः विनियामक निकायों की राय जानने के लिए सार्वजनिक डोमेन में रखा जाता है।

अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के अनुरूप तथा मौद्रिक नीति के निर्माण में परामर्शी प्रक्रिया को सुदृढ़ करने की दृष्टि से रिजर्व बैंक ने जुलाई 2005 में, मौद्रिक नीति पर एक तकनीकी परामर्शी समिति (टीएसीएपी) गठित की, जिसमें मौद्रिक अर्थशास्त्र, केंद्रीय बैंकिंग, वित्तीय बाजारों और सार्वजनिक वित्त के क्षेत्रों के विशेषज्ञ शामिल किए गए। उक्त समिति व्यापक आर्थिक तथा मौद्रिक गतिविधियों की समीक्षा करने तथा मौद्रिक नीति के मुद्दों पर रिजर्व बैंक को परामर्श देने के लिए कम से कम तिमाही में एक बार अवश्य मिलेगी। टीएसीएपी के विचारों पर रिजर्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की समिति में उसके बाद होने वाली बैठक में चर्चा की जाएगी। मौद्रिक नीति के निर्माण से ऋण प्रबंधन को अलग करने की दिशा में दो पहलुओं - सरकारी ऋण बाजार को सुदृढ़ करने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा की गई पहलें (जिनको विस्तार से भाग III में दर्शाया गया है।) तथा रिजर्व बैंक में जुलाई 2005 में वित्तीय बाजार विभाग के नाम से एक अलग विभाग की स्थापना उल्लेखनीय है।

नियम बनाम विवेक

4.114 मौद्रिक प्रबंध के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मुद्दा नीतिगत बल अर्थात् विशिष्ट अल्पावधिक और मध्यावधिक नीतिसंबंधी मुख्य उद्देश्यों की घोषणा से संबंधित है। 1990 के बाद के दशक से स्पष्ट लक्ष्यों को अपनाया है (फ्राई आदि 2000)। तथापि भारत में, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, “बहु संकेतक दृष्टिकोण” का अनुसरण किया जा रहा है इस संबंध में मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में पारदर्शिता संबंधी समूह (ऊपर उल्लिखित) ने यह राय दी है: “बहु उद्देश्यीय दृष्टिकोण” में भारी सुविधा यह है कि इस सुस्पष्टता में उद्देश्यों को परिभाषित करने की अपेक्षा नहीं होती और इसके परिणाम-स्वरूप रिजर्व बैंक की काफी जबाबदारी नहीं होती है, क्योंकि इसे विरोधी उद्देश्यों को पूरा करने का लगभग असंभव-सा कार्य करने की बाजीगरी करनी पड़ती है और इस प्रकार जबाबदेही धूमिल हो जाती है (भा.रि.बैं.2000)।

4.115 क्या विवेक पर बल देना या बहु संकेतक दृष्टिकोण बनाम एकल उद्देश्य के प्रति वैश्विक एकाभिमुखता अप्रासंगिक है? ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो भारत में मौद्रिक नीति का जोर विशिष्ट परिस्थितियों से प्रेषित होता रहा है, कभी-कभी यह विद्यमान समझ बूझ (विवेक) से हटा भी है (भाग I)। वर्तमान मामले में विवेक पर जोर देना कई कारकों को दर्शाता है। मूर्त स्तर पर, केंद्रीय बैंकों की नीति संबंधी लिखतों के उपयोग में विवेकाधिकार का प्रयोग करने को वरीयता देना निम्नलिखित तर्क पर आधारित है। नई सूचना का निरंतर आगमन तथा अर्थव्यवस्था की चालू स्थिति के बारे में आधार-स्तर की सूचना में अपेक्षा निर्णय की प्रक्रिया का जुड़ाव रुढ़िवादी नियमों को - जो कि पुरानी सूचना या अमूर्त परिकल्पना पर आधारित है, लागू (क्रियान्वित) करना उभरती हुई समस्याओं से

बाक्स IV.4

भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक, 2005

केंद्रीय वित्तमंत्री ने फरवरी 2000 में अपने बजट भाषण में यह राय व्यक्त की थी कि आधुनिक वित्त के तेजी से बदलते विश्व ने यह आवश्यक बना दिया गया है कि मौद्रिक नीति के संचालन में तथा वित्तीय प्रणाली के विनियमन में रिजर्व बैंक को महत्तर परिचालनात्मक नमनीयता प्रदान की जाए और यह कि संबंधित विधान के संशोधन के लिए संसद के समक्ष प्रस्ताव लाने के उसकी मंशा है। लोकसभा में प्रस्तुत भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक 2005 का उद्देश्य है - इस समय प्रचलित वित्तीय लिखतों से अधिक प्रकार की वित्तीय लिखतों का उपयोग करने तथा नकदी प्रारक्षित अनुपात निर्धारित करने की अधिक नमनीयता प्रदान करने वाली शक्तियां प्रदान करना। भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक के प्रमुख प्रावधान निम्न लिखित हैं -

उक्त बिल में अधिनियम की धारा 17 में अनुच्छेद 6 को जोड़कर तथा केंद्रीय बोर्ड की अनुमति से किसी अन्य वित्तीय लिखत में व्युत्पन्नी लिखतों (डेरिवेटिब्स) लेनदेन करने की अनुमति देने का प्रस्ताव किया गया है। इसमें उन व्युत्पन्नी लिखतों को विनिर्दिष्ट करने का प्रयास किया गया है जिनमें रिजर्व बैंक की शक्तियां सीमित न कर दी जाएं जैसा कि उन व्युत्पन्नी लिखतों के मामले में है जिनपर इसको विनियामक शक्तियां प्राप्त हैं। रिजर्व बैंक द्वारा चलनिधि प्रावधान के लिए रेपो और रिवर्स रेपो के प्रयोग के बारे में भ्रम को दूर

करने के लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि रिजर्व बैंक को प्रतिभूतियों को, चाहे वे केंद्र सरकार की हों, या राज्य सरकारों अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण की या विदेशी प्रतिभूतियां हों, उधार देने या लेने के लिए विशेष रूप से प्राधिकृत किया जाए। यह प्रस्ताव किया गया है कि अनुच्छेद (12 कक) जोड़कर केंद्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा किसी ऐसे स्थानीय प्राधिकरणों की, जैसा कि इसमें केंद्र सरकार की ओर से विनिर्दिष्ट किया जाए, अथवा विदेशी प्रतिभूतियों को उधार लेने या देने की अनुमति दी जाए। तथा अनुच्छेद (12 कख) रेपो और रिवर्स रेपो लेनदेनों से संबंधित है।

उक्त विधेयक में एक नया अध्याय III द जोड़ने का प्रस्ताव किया गया है, जिसमें संकल्पनाओं (डेरिवेटिब्स, रेपो, रिवर्स रेपो) की परिभाषाएं तथा मौद्रिक बाजार को विनियमित करने में रिजर्व बैंक की शक्तियों को शामिल किया गया है। रिजर्व बैंक को मेहत्तर परिचालनगत नमनीयता प्रदान करने के लिए विधेयक में भार.रि.बैं. अधिनियम की धारा 42 के अंतर्गत नकदी प्रारक्षित अनुपात (सीआरआर) की न्यूनतम तथा अधिकतम सीमाओं को हटाने का प्रस्ताव किया गया है। इसके अलावा, यह प्रस्ताव किया गया है कि बैंकों द्वारा रखी गई अतिरिक्त सीआरआर पर बैंकों को ब्याज के भुगतान का प्रावधान हटा दिया जाए क्योंकि यह मौद्रिक नीति के एक साधन के रूप में सीआर आर की प्रभावशीलता को घटा देता है।

निपटने के लिए अप्रभावी बना देता है। (वासुदेव 2003)। स्पष्ट मुद्रा की स्थिति गत लक्ष्य जैसे एकल उद्देश्य को लेकर चलने में और भी अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। संरचनागत कारक और आपूर्तिगत आवात ये दोनों ही अर्थव्यवस्था के अंदर और बाहर से मुद्रा स्थिति को मौद्रिक और गैर मौद्रिक कारकों पर निर्भर बना देते हैं। मुद्रा स्थिति को लक्ष्य-बद्ध करने के लिए, मुद्रा स्फूर्ति के पूर्णतः विश्वसनीय (निर्भर करने योग्य) उपाय को विकसित करने की जरूरत है। औद्योगिक विशेषताओं के चलते राजकोषीय प्रमुख के निरंतर बने रहने के कारण) यह व्याज-दरों को संभालते-संभालते ऋण-प्रबंधन के कार्य को अनिवार्य रूप से मौद्रिक प्रबंधन के कार्य से जोड़ देती है। पूर्णतः समन्वित वित्तीय बाजारों के अभाव में, नीति को संप्रेषण सरणि की प्रभावशीलता को अभी स्थापित करना बाकी है। इन परिस्थितियों में, यह आवश्यक है, कि विविध मौद्रिक तथा अन्य संकेतों में होनेवाली गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए संभावित परिणामों को सावधानीपूर्वक मापे और उनमें संतुलन बनाएँ।

केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता

4.116 भारत में केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता पर वाद-विवाद उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं यह संस्था। रिजर्व बैंक की स्थापना के समय भारत में जन-भावना एक स्वतंत्र केंद्रीय बैंक के पक्ष में काफी ज्यादा थी। “लंदन समिति” (जिसे भारतीय रिजर्व बैंक 1933 का मसौदा तैयार करने के लिए नियुक्त किया गया था) ने यह दृष्टिकोण लिया कि भारतीय

रिजर्व बैंक किसी भी राजनैतिक प्रभाव के मुक्त होना चाहिए और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निजी श्रेयर मामले को सर्वोत्तम मार्ग के रूप में माना। जबकि उन दिनों यह अनिवार्यतः रिजर्व बैंक के स्वामित्व का प्रश्न था, वहीं केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता संबंधी तत्कालीन चर्चा प्रायः उसके परिचानात्मक पहलुओं अर्थात् राजकोषीय प्रभुत्व या जिसे मौद्रिक नीति के उपयोग को राजकोषीय नीति की “परिचारका” कहा गया है (नाचने 2005) और विधायी प्रावधानों जो रिजर्व बैंक की परिचालनगत नमनीयता को बाधित करते हैं, पर केंद्रित थी (भा.रि.बैं.2000)।

4.117 विकास के चरण में सरकार के उधार कार्यक्रम तथा रिजर्व बैंक द्वारा इसके मौद्रिकरण ने राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति की परस्पर भूमिकाओं के सम्बंध में प्रश्न खड़े किए हैं। मौद्रिक नीति को स्वयं विशेषकर 1980 के बाद के दशक में बढ़े हुए राजकोषीय घाटों के मुद्रा स्फूर्तिकारी प्रभाव को निष्क्रिय करने का कार्यकर्म करना पड़ा। चक्रवर्ती समितित्ने दृढतापूर्वक एक ऐसे मौद्रिक लक्ष्य बनाए जाने की प्रणाली की सिफारिशों की हैं जो सरकार तथा रिजर्व बैंक को परस्पर-सहमत स्तर तक ही सरकार को रिजर्व बैंक निवल ऋण लेना बाध्यकारी करेगा। मौद्रिक नीति के संचालन में तथा वित्तीय प्रणाली के विनियमन में रिजर्व बैंक को महत्तर परिचालन गत नमनीयता प्रदान करने का मुद्दा 1990 के बाद के दशक से अधिक प्रबल हो गया है, विशेषकर भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए वैश्विक समेकन के संदर्भ में। रंगराजन (1993) ने केंद्रीय बैंक की स्वतंत्रता की परिभाषा मौद्रिक नीति के संचालन में संस्थागत व्यवस्थाओं के रूप में की

है तथा तदर्थ खजाना बिल जारी करके सरकार के राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रिकरण की प्रथा की भारतीय संदर्भ में मौद्रिक नीति के प्रभावी संचालन पर प्रभाव डालनेवाले प्रधान कारक मानकर आलोचना की है।

4.118 तदर्थ खजाना बिलों का चरणबद्ध रूप में समाप्त हो जाना तथा राजकोषीय जवाबदेही एवं बजट प्रबंध (एफआरबीएम) विधान का अधिनियम बन जाना ये दो ऐसे महत्वपूर्ण मील के पत्थर हैं, जो मौद्रिक नीति को राजकोषीय विस्तार के परिणामों से सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा बेहतर मौद्रिक - राजकोषीय समन्वय को सुनिश्चित करते हैं। एफआरबीएम अधिनियम, 2003 जो 5 जुलाई 2004 से प्रभावी हो गया था, केंद्र सरकार को यह आदेश देता है कि वह राजस्व घाटे को मार्च 2009 तक समाप्त कर दे और राजकोषीय घाटे को घटाकर मार्च 2008 तक सघउ के 3 प्रतिशत तक ले आए। भा.रि.बैं. अधिनियम को संशोधित करने के लिए प्रस्तावित विधान (कानून) मौद्रिक नीति के संचालन में, वित्तीय क्षेत्र के विकास के लिए मार्गदर्शन करने में तथा वित्तीय क्षेत्र की स्थिरता प्राप्त करने में रिजर्व बैंक को और अधिक परिचालनात्मक नमनीयता प्रदान करता है (बाक्स IV.4)।

V. निष्कर्ष

4.119 आर्थिक विकास के निर्धारक के रूप में संस्थाओं पर बढ़ती हुई शोध के प्रति रुचि के संदर्भ में यह अध्याय 1935 से, जब भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई थी, भारत में केंद्रीय बैंकिंग विकास का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। रिजर्व बैंक की स्थापना यूरोप के केंद्रीय बैंकों की पद्धति पर हुई थी, परन्तु इसके कार्यों का विकास काफी कुछ बदलकर इसके निर्माण के वर्षों में केंद्रीय बैंकिंग के परंपरागत स्वरूप से विकास के चरण में संस्थागत बुनियादी संरचना के निर्माण के रूप में तथा सुधार के चरण में वित्तीय क्षेत्र की सुदृढता को सुनिश्चित करने वाली संस्था के रूप में हो गया है।

4.120 आर्थिक आयोजना शुरू होने तथा भारतीय अर्थ-व्यवस्था का संरचनात्मक रूपांतरण होने के साथ ही रिजर्व बैंक के कार्य कई गुना बढ़ गए। शताब्दियों पुराने उपनिवेशवादी शासन से मुक्त हुए एक विकासशील देश के केंद्रीय बैंक के रूप में, रिजर्व बैंक को योजना के वित्त पोषण में सरकार के संसाधनों के अंतराल को भरने तथा आवश्यक वित्तीय बुनियादी संरचना का निर्माण करने के रूप में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभानी पड़ी। “संस्थाओं की जननी” के रूप में रिजर्व बैंक ने भारत में वित्तीय

क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रारंभिक वर्षों में विकासात्मक आयोजना को समर्थन प्रदान करने के लिए संस्थागत मशीनरी की स्थापना करने पर जोर रहा, जबकि सुधारों के चरण में जोर वित्तीय बाजारों के विकास और उनके पोषण पर हो गया है।

4.121 वैश्विक गतिविधियों (जैसे द्वितीय विश्व युद्ध, ब्रिटेन वुड्स प्रणाली का असफल हो जाना) ने रिजर्व बैंक के कार्य-कलाप को प्रभावित किया। परंतु भारत में केंद्रीय बैंकिंग के विकास में प्रमुख मील का पत्थर तब उभरा जब रिजर्व बैंक को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का भार आ पड़ा। भारत में मौद्रिक नीति के ढांचे में केंद्रीय बैंकिंग के कौशल में हुए वैश्विक विकास के साथ-साथ परिवर्तन हुए हैं। वास्तव में, भारत विकासशील देशों में पहला ऐसा देश था जिसने 1985 में मौद्रिक लक्ष्य को अपनाया था। 1990 के बाद के दशक में विशेषकर, नियंत्रण के प्रत्यक्ष साधनों की बजाय अप्रत्यक्ष साधनों को अपनाने का जो बदलाव आया - वह वैश्विक प्रवृत्ति के अनुरूप रहा। साथ ही भारत में मौद्रिक प्रबंध में वित्तीय स्थिरता संबंधी मुद्दे अत्यधिक महत्वपूर्ण रहे हैं, जैसा कि अन्य अर्थ व्यवस्थाओं में रहा है (जाधव, 2005)। रिजर्व बैंक ने नीति के निर्माण में परामर्शी दृष्टिकोण अपनाया है तथा अनेक संस्थागत व्यवस्थाएं की हैं। तथापि वैश्विक वित्तीय प्रणाली के साथ भारतीय वित्तीय बाजारों को समेकित करने के मुद्दे पर भारत ने इस दिशा में सावधानीपूर्वक तथा क्रमिक रूप से एवं उदारीकरण की गति को अंतर्निहित व्यापक आर्थिक गतिविधियों, घरेलू वित्तीय प्रणाली की तैयारी की स्थिति तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों की गतिविधियों के साथ समायोजित करते हुए बढ़ने का रास्ता चुना है। रिजर्व बैंक ने पर्यवेक्षी और विनियामक ढांचे को सुदृढ करने के लिए तथा साथ ही बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के अनुरूप प्रतिक्रिया करने और प्रौद्योगिकीगत उन्नयन से उत्पन्न कारोबारी अवसरों का लाभ उठाने के लिए वित्तीय संस्थाओं को पर्याप्त लचीलापन प्रदान करने हेतु अनेक पहलों की हैं। सुधारों को आगे बढ़ाते हुए रिजर्व बैंक ने मुद्रा - प्रबंध, भुगतान एवं निपटान प्रणालियों के विनियमन सहित, परंपरागत कार्यों का यथोचित रूप से पुनर्विन्यास करके समग्र प्रणालीगत दक्षता को बढ़ाने का सद्दिवेक पूर्वक प्रयास भी किए हैं। इन सभी पहलों ने भारत में वित्तीय क्षेत्र को सुदृढ करने तथा इसे अपने आप को उभरते हुए परिवेश को अपनाने में समर्थ बनाने का कार्य किया है। और इसकी पुष्टि विश्व समुदाय को अपनी धारणा बदल कर भारत को एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति मानने के रूप में हुई है।